वर्ष 11 अंक 01 जनवरी 2026 पृष्ठ : 40 मूल्य : 50 रूपये

मीडिया मैप

उदार जनतंत्र का सजग प्रहरी

MM
MEDIA MAP
@mediamapnews
Our Digital Platform

चौथे स्तंभ की विरासत का

संक्रमण काल

www.mediamap.co.in
Follow us :

: हम क्यों :

मीडिया मैप एक वैचारिक पत्रिका है। हमारे समाज के नीतिपरक और मूल्यनिष्ठ बिन्दु तथा इनसे जुड़ाव रखने वाले आर्थिक, सामाजिक और राजनैतिक मुद्दे इसकी विषयवस्तु है। मीडिया मैप की संपादकीय नीति उदारवादी, आधुनिक, प्रगतिशील व सर्व धर्म समभाव की भावना पर आधारित है।

मीडिया मैप हमारे बहुलतावादी समाज की विविधताओं से सृजित समस्त सोच, विचार, दृष्टिकोण, मूल्य और मान्यताओं को अपने में समाहित करने का एक प्रयास है। हमारा उद्देश्य वैज्ञानिक सोच द्वारा समाज से जुड़े मूल मुद्दों पर एक प्रबुद्ध जनमत विकसित करना है, जिससे देश में संकुचित मानसिकता और आपसी टकराव से ऊपर उठकर एक उच्चस्तरीय विचार-विमर्श का वातावरण तैयार हो सके।

"मीडियामैप परिवार अपने सभी पाठकों को नववर्ष की हार्दिक शुभकामनाएँ देता है और आशा करता है कि यह वर्ष विवेकपूर्ण सोच, जिम्मेदार पत्रकारिता और सामाजिक समरसता की दिशा में ठोस एवं सकारात्मक बदलावों का साक्षी बने।"

मीडिया मैप

उदार जनतंत्र का सहज प्रहरी

संपादकीय सलाहकार मंडल
डॉ. बलदेवराज गुप्त
के. बी. माथुर
डॉ. सलीम खान

प्रधान संपादक
प्रदीप माथुर

संयुक्त संपादक : डॉ सतीश मिश्र
तकनीकी संपादक : राजीव जी
राजनैतिक संपादक : डॉ एम् एच ग़ज़ाली

प्रबंध संपादक : चन्द्र कुमार
प्रबंधक : जगदीश गौतम
वरिष्ठ उप संपादक : प्रशान्त कुमार
कनिष्ठ उप संपादक : अंकुर कुमार

विधि परामर्शदाता-संजय माथुर

पंजीकृत एवं संपादकीय कार्यालय 69 - ज्ञानखंड - 4, इन्दिरापुरम, गाजियाबाद 201014 उत्तर प्रदेश
दूरभाष – 0120 - 3248535

स्वामी, मुद्रक, प्रकाशक, एवं संपादक प्रदीप माथुर द्वारा- वर्ल्ड विंडो डिजिटल प्रेस, नवयुग मार्केट, गाजियाबाद, उत्तर प्रदेश 201001 से मुद्रित एवं मीडिया मैप प्रकाशन-69-ज्ञानखंड-4, इन्दिरापुरम, गाजियाबाद 201014 उत्तर प्रदेश से प्रकाशित।

जन संपर्क अधिकारी मो. 9810533682

इस पत्रिका से जुड़े सभी पदाधिकारी, लेखकगण व अन्य सहयोगीगण समाज हित में बगैर किसी पारिश्रमिक या वेतन के स्वैच्छिक सेवा प्रदाता हैं।

इस अंक में प्रकाशित समस्त फीचर व समाचार के लेखकों के अपने स्वतंत्र विचार हैं, जिससे स्वामी, मुद्रक, प्रकाशक एवं संपादक का कोई उत्तरदायित्व नहीं है। किसी भी प्रकार के विवाद की स्थिति में क्षेत्राधिकार जिला एवं सत्र न्यायालय गाजियाबाद, उत्तर प्रदेश होगा।

RNI No. : UPHIN/2016/68336

अनुक्रमणिका

5 संपादकीय

समाचार सरिता 6-9

10-11 भारतीय गणतंत्र और संविधान

पुतिन यात्रा: बदलता विश्व परिदृश्य 12-13

14 महात्मा गांधी हत्याकांड की दोबारा जांच..

मॉब लिंचिंग: क्रूर राजनीति का नंगा सच 15

16-17 शास्त्री जी मेरे पिता, मेरे गुरु, मेरे आदर्श

'विश्व शांति राष्ट्र' सन्देश..... 18

19 विश्व शांति के अग्रदूत - महर्षि महेश योगी

नेताजी और रैंकोजी मन्दिर (जापान) 20-21

22-30 आवरण कथा

पुनर्जागरण के प्रणेता स्वामी विवेकानंद 31-32

33-34 नेताजी के जीवन का आत्मिक पहलू

बजट : आर्थिक स्थिरता और चुनौतियां 35-36

37-38 हास्य व्यंग : जनतंत्र कबूतरबाजी का

Email : editor@mediamap.co.in

मीडिया मैप मासिक पत्रिका के 10 वर्ष की संघर्ष यात्रा

नये कलेवर और तेवर के साथ जब यह मीडिया मैप, पत्रिका का जनवरी 2026 अंक आप के हांथ में होगा,तब हम सफलता के दस वर्ष पूर्ण कर ग्यारहवें वर्ष में प्रवेश कर चुके होंगे।

तेज रफ्तार डिजिटल युग में जहां खबरें सेकेंडों में जन्म लेती हैं और मिनट में विस्मृति हो जाती है वहां किसी मासिक पत्रिका का छप पाना कोई आसान कार्य नहीं है ।

मीडिया मैप, मासिक पत्रिका का दस वर्षों तक प्रकाशित होना अपने-आप में वैचारिक साहस की घोषणा है। यह केवल छपने की नहीं, पत्रकारिता समाज में टिके रहने और असर छोड़ने की सफल कहानी कहती है। वैचारिक प्रतिबद्धता, सम्पादकीय साहस और पाठक विश्वास की यह एक दशक की ऐतिहासिक यात्रा बताती है कि विचारों की गहराई आज भी सतही शोर पर भारी है।

इन दस वर्षों में इस पत्रिका ने यह साबित किया कि पत्रकारिता का अर्थ केवल “पहले” होना नहीं, बल्कि “ठीक” होना है। जब मीडिया का बड़ा हिस्सा तात्कालिकता, सनसनी और क्लिक की दौड़ में उलझा हुआ है, तब इस मीडिया मैप ने ठहरकर सोचने, गहराई से देखने और संदर्भ के साथ तथ्यात्मक लिखने की परंपरा को जीवित रखा। यही इसकी वास्तविक पहचान बनी,कम शब्दों का शोर नहीं, बल्कि अर्थपूर्ण विचारों की गूंज। बीते 10 वर्षों में इस मीडिया मैप ने तात्कालिक सनसनी के बजाय स्थाई विमर्श को चुना । राजनीति, समाज, संस्कृति, अर्थव्यवस्था और विचार दर्शन जैसे विषयों पर संतुलित, शोध परक और निर्भीक लेखन इसको विशिष्ट पहचान दी।

संपादकीय स्तर पर यह दशक समझौता न करने का दशक रहा। सत्ता से प्रश्न पूछने का साहस हो या समाज की रूढ़ियों को चुनौती देने की ईमानदारी, मीडिया मैप ने कभी सुविधाजनक चुप्पी नहीं ओढ़ी। तथ्य, तर्क और विवेक इसके स्थायी औज़ार रहे। इसी कारण यह पत्रिका केवल पढ़ी नहीं गई, बल्कि गंभीर पाठकों के लिए संदर्भ ग्रंथ बनी।

इस सफलता की एक बड़ी वजह लेखकों और पाठकों के बीच बना विश्वास है। लेखकों को अवसर देना, वैचारिक विविधता को स्थान देना और असहमति को भी सम्मान देने जैसे पत्रकारिता के मूल्यों ने मीडिया मैप को एक जीवंत मंच बनाया। यह पत्रिका एकतरफा संवाद का नहीं, बल्कि सतत विमर्श का केंद्र रही हैं।

यह प्रमाण है कि तकनीक गति दे सकती है, पर दिशा केवल मूल्य ही देते हैं। दस वर्ष पूरे होना उत्सव है, पर साथ ही चुनौती भी—कि अब जिम्मेदारी और बड़ी है। सच के पक्ष में खड़े रहने की, विचारों की लौ जलाए रखने की और पत्रकारिता को बाजार नहीं, मिशन बनाए रखने की। मीडिया मैप परिवार इन मूल्यों पर चलने के लिए कटिबद्ध है।

■■■

सम्पादकीय

प्रो.प्रदीप माथुर

आधुनिक संदर्भ में जिस अर्थ में हम पत्रकारिता को समझते हैं, उसकी यात्रा लगभग ढाई शताब्दी पहले तत्कालीन कलकत्ता (वर्तमान कोलकाता) नगर से आरंभ हुई थी। भारत का पहला समाचारपत्र हिकीज़ बंगाल गजट 29 जनवरी, 1780 को प्रकाशित हुआ। आयरिश मूल के जेम्स ऑगस्टस हिकी द्वारा स्थापित यह अंग्रेज़ी भाषा का साप्ताहिक समाचारपत्र भारतीय उपमहाद्वीप में अपनी तरह का पहला प्रयास था। सत्ता की आलोचना करने का साहसिक उदाहरण प्रस्तुत करते हुए इस पत्र ने भारत में मुद्रित पत्रकारिता की नींव रखी। यद्यपि 1782 में ईस्ट इंडिया कंपनी द्वारा इसे प्रतिबंधित कर दिया गया, लेकिन इसका ऐतिहासिक महत्व आज भी निर्विवाद है।

इस ऐतिहासिक उपलब्धि के स्मरण में मीडियामैप के जनवरी अंक में भारतीय प्रेस पर एक विशेष परिशिष्ट प्रकाशित करने का निर्णय लिया गया है। यह अंक प्रिंट, प्रसारण और डिजिटल समाचार माध्यमों के साथ-साथ सोशल मीडिया, मीडिया शिक्षा एवं अनुसंधान, गैर-मीडिया पेशेवरों के लिए संचार प्रशिक्षण तथा भारत में मीडिया की वर्तमान स्थिति पर गंभीर विमर्श प्रस्तुत करता है। हालांकि, हमारी प्रमुख चिंता देश में पत्रकारिता के गिरते मानकों और उस प्रतिष्ठित संस्था की विश्वसनीयता में आई कमी को लेकर है, जिसे हमारे लोकतांत्रिक ढांचे का चौथा स्तंभ कहा जाता है। टीआरपी-प्रधान पत्रकारिता, अधूरी सूचनाओं का प्रसार और पक्षधरता जैसी प्रवृत्तियाँ इस संकट को और गहरा कर रही।

जनवरी वह महीना है जिसमें अनेक महान व्यक्तित्वों का जन्म हुआ और कुछ ने इस संसार को अलविदा कहा। इन सभी ने आधुनिक भारत के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। महात्मा गांधी, नेताजी सुभाष चंद्र बोस और लाल बहादुर शास्त्री जैसे नाम सहज ही स्मरण हो जाते हैं, लेकिन कम ही लोग जानते हैं कि भारतीय नवजागरण के अग्रदूत स्वामी विवेकानंद और हमारे समय के महान सांस्कृतिक राजदूत महर्षि महेश योगी का जन्म भी जनवरी माह में हुआ था। मीडियामैप इस अंक में उनके विचारों और योगदान पर विस्तृत लेखों के माध्यम से उन्हें श्रद्धांजलि अर्पित करता है।

नववर्ष को सदैव आशा और संभावनाओं की दृष्टि से देखा जाना चाहिए। सशक्त होती अर्थव्यवस्था के संकेतों के बीच हमारे पास देश के भविष्य को लेकर आशावादी होने के पर्याप्त कारण हैं। किंतु सामाजिक-आर्थिक मोर्चे पर कुछ गंभीर चुनौतियाँ भी मौजूद हैं, जिनका समाधान अत्यंत आवश्यक है। दुर्भाग्यवश, हमारा समाज जाति और सांप्रदायिक आधार पर गहराई से विभाजित होता जा रहा है। इससे घृणा, संदेह, असहिष्णुता और सामाजिक संघर्ष का वातावरण बन रहा है, जो कई बार हिंसा का रूप ले लेता है। इस तनावपूर्ण माहौल में वंचितों और जरूरतमंदों के प्रति संवेदना, सहानुभूति, समन्वय और उदारता जैसे मानवीय मूल्य सबसे अधिक प्रभावित हो रहे हैं।

इससे भी अधिक चिंताजनक वैज्ञानिक दृष्टिकोण का क्षय है। आस्था और विश्वास के नाम पर समाज अंधविश्वासों की ओर बढ़ता जा रहा है। ढोंगी धार्मिक नेताओं का प्रभाव बढ़ रहा है, जो सरल और भोले-भाले लोगों की भावनाओं का दोहन कर लाभ अर्जित करते हैं। नववर्ष में हमें इस प्रवृत्ति से बाहर निकलने का संकल्प लेना होगा, क्योंकि यह हमें सांस्कृतिक और बौद्धिक रूप से पिछड़ा बना रही है। आर्थिक प्रगति के चाहे जो भी संकेत हों, इस मानसिकता के साथ हम तकनीकी रूप से उन्नत आधुनिक विश्व में प्रतिस्पर्धा नहीं कर सकते।

■■■

वंदे मातरम्: गीत से अधिक राजनीति

लोकसभा में वंदे मातरम् के 150 वर्ष पूरे होने पर हुई बहस ने एक बार फिर दिखा दिया कि राष्ट्रीय प्रतीकों पर शोर बहुत होता है, मुद्दा कम।औपचारिक रूप से यह 1875 में बंकिमचंद्र चट्टोपाध्याय द्वारा रचित इस देशभक्ति गीत के वर्षभर चलने वाले समारोहों का हिस्सा बताया गया—जिसका उद्देश्य आत्मविश्वास जगाना और राष्ट्र निर्माण की प्रेरणा देना है। लेकिन सवाल यह है कि इस बहस का समय और तेवर क्यों इतने राजनीतिक हैं?

सत्तारूढ़ दल ने इस अवसर को सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के विमर्श में बदलते हुए 1937 केउस
निर्णय को निशाने पर लिया, जब कांग्रेस ने—नेहरू के नेतृत्व में—गीत के कुछ अंतरों को सार्वजनिक गायन से अलग रखने का फैसला किया था। प्रधानमंत्री के अनुसार, यह "विभाजन के बीज" थे और वंदे मातरम् की "आत्मा" के साथ अन्याय। संदेश साफ है—इतिहास की एक व्याख्या के जरिए आज की राजनीति को साधना।
विपक्ष ने पलटवार में आरोप लगाया कि सांस्कृतिक प्रतीकों को हथियार बनाकर मौजूदा समस्याओं से ध्यान भटकाया जा रहा है। प्रियंका गांधी ने याद दिलाया कि 1937 में कांग्रेस कार्यसमिति ने रवींद्रनाथ टैगोर की सलाह पर केवल दो अंतरों के गायन का निर्णय इसलिए लिया था ताकि राष्ट्रीय आंदोलन की एकता बनी रहे और धार्मिक संवेदनशीलताओं का सम्मान हो। आयोजकों को अन्य आपत्तिहीन गीत चुनने की स्वतंत्रता भी दी गई थी। यह व्यावहारिक समझौता था, न कि देशभक्ति से विचलन।

यह बहस बंगाल की राजनीति से भी जुड़ती दिखती है। 2021 की हार के बाद भाजपा वंदे मातरम् को बंगाली सांस्कृतिक अस्मिता के प्रतीक के रूप में आगे बढ़ा रही है, जबकि टीएमसी आरोप लगा रही है कि भाजपा दो हान बंगालियों—बंकिम और टैगोर—को आमने-सामने खड़ा कर विभाजन पैदा करना चाहती है।

इतिहास बताता है कि वंदे मातरम् औपनिवेशिक विरोध का शक्तिशाली उद्घोष था—हिंदुओं और मुसलमानों, दोनों के लिए। 1905 में कांग्रेस ने इसे राष्ट्रीय गीत के रूप में अपनाया। 1937 में कुछ मुस्लिम नेताओं ने गीत के कुछ हिस्सों पर धार्मिक आपत्ति जताई, जिसके बाद सीमित गायन का निर्णय हुआ। 1950 में संविधान सभा ने जन गण मन को राष्ट्रीय गान घोषित किया और वंदे मातरम् को समान सम्मान दिया—दोनों की गरिमा स्थापित करते हुए।

निष्कर्ष साफ है: वंदे मातरम् और जन गण मन दोनों ही राष्ट्र की साझा विरासत हैं। 150 वर्षों की विरासत का सबसे बड़ा सम्मान यही होगा कि यह बहस एकता को मजबूत करे, न कि नए टकराव रचे।

आरएसएस की लॉबिंग: भारत में खामोशी, विदेश में सवाल

हाल के हफ्तों में अमेरिका में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ (आरएसएस) और उससे जुड़े विदेशी नेटवर्क की गतिविधियों को लेकर कई महत्वपूर्ण जानकारियाँ सामने आई हैं। इन खुलासों के संभावित राजनीतिक और कूटनीतिक निहितार्थ गहरे हैं, लेकिन हैरानी की बात यह है कि भारतीय मुख्यधारा मीडिया में इन्हें लगभग पूरी तरह नज़रअंदाज़ किया गया है।

रिपोर्टों के अनुसार आरएसएस से जुड़ी संस्था हिंदू स्वयंसेवक संघ (HSS) ने अमेरिकी लॉबिंग फर्म स्क्वायर पैटन बोग्स को करीब तीन लाख डॉलर का भुगतान किया, ताकि अमेरिकी सांसदों और सरकारी एजेंसियों के समक्ष कुछ मुद्दे उठाए जा सकें। यह वही फर्म है जो दुनिया भर में बड़े राजनीतिक और कॉर्पोरेट हितों के लिए लॉबिंग करती है। अगर किसी अन्य भारतीय संगठन पर ऐसे आरोप लगते, तो देश में तीखी राजनीतिक बहस छिड़ जाती। लेकिन आरएसएस से जुड़ा होने के कारण यह खबर चर्चा से बाहर ही रही।

इन खुलासों के साथ-साथ अमेरिका की इंटरनेशनल रिलिजियस फ़्रीडम रिपोर्ट 2023 और अन्य अकादमिक अध्ययनों में भारत में धार्मिक स्वतंत्रता को लेकर चिंता जताई गई है। इनमें नागरिकता संशोधन कानून (CAA) जैसी नीतियों का उल्लेख है और यह भी बताया गया है कि विदेशों में हिंदुत्व-सम्बद्ध संगठन किस तरह प्रवासी समुदायों और जनमत को प्रभावित करते हैं। HSS खुद दावा करता है कि वह 40 से अधिक देशों में सक्रिय है और अमेरिका में उसका व्यापक नेटवर्क है।

विश्लेषकों का मानना है कि मीडिया की चुप्पी के पीछे आरएसएस द्वारा दशकों में खड़ा किया गया व्यापक नेटवर्क है, जो शिक्षा, नागरिक समाज, नौकरशाही और सार्वजनिक विमर्श तक फैला है। जब प्रभावशाली पदों पर बैठे लोग एक ही विचारधारा से प्रभावित हों, तो असहज सवाल पूछने की गुंजाइश कम हो जाती है। सरकार और कॉर्पोरेट हितों पर निर्भर मीडिया भी संवेदनशील मुद्दों से बचता दिखता है।

अंतरराष्ट्रीय स्तर पर मानवाधिकार संगठन, शिक्षाविद और नागरिक समाज हिंदुत्व राजनीति की प्रकृति पर खुलकर चर्चा कर रहे हैं। भले ही कुछ वैश्विक नेता भारत सरकार की प्रशंसा करें, लेकिन अकादमिक और मानवाधिकार रिपोर्टें अलग तस्वीर पेश करती हैं। इससे भारत की वैश्विक छवि और नैतिक नेतृत्व के दावे पर सवाल उठते हैं।

कुल मिलाकर, अमेरिका में आरएसएस-सम्बद्ध लॉबिंग, फंडिंग की पारदर्शिता, आंतरिक आरोप और अंतरराष्ट्रीय रिपोर्टें मिलकर गंभीर कानूनी, नैतिक और राजनीतिक मुद्दे उठाती हैं।

मंदिर विध्वंस: राजनीति और आस्था का टकराव

दिल्ली के झंडेवालान इलाके में एक प्राचीन मंदिर के ध्वंस ने राजधानी में प्रशासन, राजनीति और धार्मिक संस्थाओं की भूमिका पर गंभीर सवाल खड़े कर दिए हैं। सोशल मीडिया पर वायरल वीडियो और स्थानीय लोगों के विरोध ने इस कार्रवाई को महज़ अतिक्रमण हटाने की प्रक्रिया से आगे बढ़ाकर एक बड़े सामाजिक–राजनीतिक विवाद में बदल दिया है।

स्थानीय निवासियों का कहना है कि बाबा श्री वीर दत्त/पीर रतननाथ संप्रदाय से जुड़ा यह मंदिर 1947 से स्थापित था और दशकों से नियमित पूजा होती आ रही थी। इसके विपरीत प्रशासन इसे "मजार" और "अवैध अतिक्रमण" बता रहा है। आरोप यह भी है कि पास स्थित आरएसएस की बहुमंज़िला इमारत की पार्किंग बढ़ाने के लिए मंदिर को रातों-रात गिराया गया। यही विरोध का सबसे बड़ा कारण बन गया है।

वायरल वीडियो में महिलाएँ पुलिस पर दुर्व्यवहार और बल प्रयोग के आरोप लगाती दिखती हैं। उनका कहना है कि बिना पूर्व सूचना इलाके को घेर लिया गया, बैरिकेड लगाए गए और लोगों को जबरन दूर छोड़ दिया गया। निवासियों का सवाल है कि जो संरचना सात दशकों तक कभी विवादित नहीं रही, वह अचानक अवैध कैसे हो गई? एक वृद्ध साधक का कथन लोगों की पीड़ा को उजागर करता है—"एक ओर बड़े मंदिर बन रहे हैं और दूसरी ओर हमारे राम का मंदिर तोड़ा जा रहा है—यह कैसा न्याय है?"

स्थानीय लोगों का दावा है कि मंदिर के साथ-साथ लगभग 50 घर भी तोड़े गए, जिनमें कई परिवार 40 से 70 वर्षों से रह रहे थे और उनके पास वैध कागजात थे। इससे यह मामला केवल धार्मिक आस्था का नहीं, बल्कि विस्थापन और नागरिक अधिकारों का भी बन गया है।

कानूनी दृष्टि से भी कई प्रश्न उठ रहे हैं। निवासियों का आरोप है कि हाई कोर्ट के स्टे ऑर्डर के बावजूद कार्रवाई की गई। विशेषज्ञों के मुताबिक, दशकों पुरानी स्थायी संरचना हटाने से पहले नोटिस, सर्वे और स्पष्ट आदेश अनिवार्य होते हैं। यदि उद्देश्य केवल पार्किंग विस्तार था, तो यह तर्क संवैधानिक कसौटी पर कमजोर पड़ता है।

राजनीतिक तौर पर यह मामला इसलिए भी असहज है क्योंकि सत्तारूढ़ दल स्वयं को हिंदू हितों का रक्षक बताता है। अयोध्या में राम मंदिर निर्माण के बीच दिल्ली में एक मंदिर का ध्वंस कई सवाल खड़े करता है—क्या विकास के नाम पर आस्था को कुचला जा रहा है? क्या प्रशासन प्रभावशाली संगठनों के दबाव में काम कर रहा है?

न्यायिक मूल्यों को लेकर गहरी चिंताएँ

न्याय किसी भी राजनीतिक व्यवस्था की आधारशिला होती है। यदि जनता का न्याय से विश्वास उठने लगे, तो न्याय का पतन अपरिहार्य हो जाता है। हाल के समय में भारत की न्यायिक प्रक्रिया और उसके मूल्यों को लेकर ऐसी ही गहरी चिंताएँ उभर रही हैं। एक वर्ग का मानना है कि न्यायिक दृष्टिकोण सार्वभौमिक मानवाधिकारों से हटकर बहुसंख्यकवादी सोच की ओर झुक रहा है, जिसका प्रभाव विशेष रूप से अल्पसंख्यकों—खासकर मुसलमानों और ईसाइयों पर पड़ रहा है।

इसी पृष्ठभूमि में सेवानिवृत्त न्यायाधीशों, वरिष्ठ वकीलों और नागरिक अधिकार कार्यकर्ताओं ने भारत के मुख्य न्यायाधीश (CJI)जस्टिस सूर्यकांत को एक खुला पत्र लिखकर 2 दिसंबर को रोहिंग्या शरणार्थियों से जुड़ी एक हैबियस कॉर्पस याचिका की सुनवाई के दौरान की गई उनकी टिप्पणियों पर असहमति जताई। पत्र में इन टिप्पणियों को "खतरनाक मिसाल" बताया गया है।

सुनवाई के दौरान CJI ने रोहिंग्याओं को कानूनी रूप से शरणार्थी घोषित न किए जाने, उनके अवैध रूप से सीमा पार करने और ऐसे लोगों को भारत में संरक्षण देने की संवैधानिक जिम्मेदारी पर सवाल उठाए थे। पत्र के हस्ताक्षरकर्ताओं का कहना है कि ऐसी टिप्पणियाँ रोहिंग्याओं को अमानवीय रूप में प्रस्तुत करती हैं और संविधान, भारतीय कानूनों तथा अंतरराष्ट्रीय मानवाधिकार सिद्धांतों के विपरीत हैं।

पत्र में याद दिलाया गया कि संयुक्त राष्ट्र ने रोहिंग्याओं को दुनिया का "सबसे अधिक उत्पीड़ित अल्पसंख्यक" कहा है। म्यांमार में वे दशकों से हिंसा, भेदभाव और नागरिकता-वंचना का शिकार रहे हैं, जिसे अंतरराष्ट्रीय न्यायालय ने जातीय सफाए और नरसंहार के दायरे में माना है। भारत सहित कई देशों में वे केवल सुरक्षा की तलाश में शरण ले रहे हैं।पूर्व न्यायाधीशों और वकीलों ने इस बात पर जोर दिया कि CJI केवल एक विधिक पदाधिकारी नहीं, बल्कि वंचित और हाशिये पर खड़े लोगों के अधिकारों के अंतिम संरक्षक होते हैं। उनके शब्द न केवल न्यायालय बल्कि समाज और प्रशासन पर भी गहरा प्रभाव डालते हैं। शरणार्थियों को "घुसपैठिया" बताने वाला विमर्श न्यायपालिका की नैतिक साख को कमजोर कर सकता है और पीठ की निष्पक्षता पर भी प्रश्न खड़े कर सकता है।पत्र में भारत की ऐतिहासिक परंपरा का उल्लेख किया गया, जहाँ तिब्बती, श्रीलंकाई तमिल और 1971 में पूर्वी पाकिस्तान से आए शरणार्थियों को मानवीय आधार पर संरक्षण मिला था। ■■■

जीवन सार

भगवद्गीता, उपनिषद और आधुनिक दर्शन की दृष्टि में

जीवन का अर्थ केवल जन्म लेना, खाना-पीना, संतान उत्पन्न करना और मृत्यु को प्राप्त हो जाना नहीं है। भगवद्गीता कहती है कि मानव जीवन का सार है — स्वधर्म का पालन, कर्मयोग की साधना और आत्मा के वास्तविक स्वरूप का ज्ञान। मनुष्य का कर्तव्य है कि वह अपने कर्मों को परिणाम-मोह से मुक्त होकर समर्पण और निष्ठा के साथ करे। यह जीवन को उच्च उद्देश्य से जोड़ता है।

उपनिषद घोषणा करते हैं— "तत्त्वमसि", अर्थात् "तुम वही हो", जो परम सत्य है। जीवन का सार आत्मा और ब्रह्म के एकत्व को पहचानना, भीतर छिपे अनंत प्रकाश को अनुभव करना और अज्ञान के अंधकार से मुक्त होना है। आत्मज्ञान ही मनुष्य को पशु-स्तर के जीवन से ऊपर उठाकर दिव्यता की अनुभूति कराता है।

आधुनिक दर्शन कहता है कि जीवन तब सार्थक होता है जब मनुष्य सचेतन, सृजनशील, नैतिक और अर्थपूर्ण जीवन जीता है। केवल अस्तित्व पर्याप्त नहीं; अर्थ और उद्देश्य की खोज ही मनुष्य को विशिष्ट बनाती है।इस प्रकार, जीवन का सार है— आत्मबोध, उद्देश्यपूर्ण कर्म, नैतिक चेतना और भौतिक-आध्यात्मिक संतुलन। जो व्यक्ति इन चारों को साध लेता है, वही वास्तव में जीवन को जीता है, केवल बिताता नहीं।

हमारी पहल : सत्य की कसौटी

पूर्वाग्रह-जनित असत्य, भ्रामक प्रचार और इतिहास-विरूपण के विरुद्ध मुहिम

गैर-जिम्मेदाराना बयानबाज़ी, निराधार आरोप, चरित्र-हनन और ऐतिहासिक तथ्यों की तोड़-मरोड़ दुर्भाग्यवश हमारे सार्वजनिक विमर्श की एक सामान्य विशेषता बनती जा रही है। एक ओर ऐसा विमर्श जनमानस को झूठ और पूर्वाग्रह से प्रदूषित करता है, तो दूसरी ओर अर्थव्यवस्था, राजनीति और शासन जैसे अहम मुद्दों पर होने वाले गंभीर और संयत संवाद को भारी क्षति पहुँचाता है। दुर्भाग्य से ऐसे विषयों पर चर्चा उच्चतम स्तर तक पहुँच जाती है और उन दिग्गजों का बहुमूल्य समय ले लेती है, जिसे राष्ट्र-निर्माण के कार्यों में लगना चाहिए।

इसलिए समय की माँग यह है कि मीडिया से जुड़े लोग सामाजिक और पारंपरिक मीडिया के माध्यम से स्वार्थी तत्वों द्वारा फैलाए जा रहे झूठ और विकृत सूचनाओं को प्रभावी ढंग से चुनौती देने के लिए कुछ सकारात्मक कदम उठाएँ। इसी उद्देश्य से 'मीडिया मैप' ने एक विशेष कॉलम शुरू करने का निर्णय लिया है, जिसमें उन मुद्दों की सही और तथ्यपरक तस्वीर प्रस्तुत करने का प्रयास किया जाएगा, जिनके बारे में झूठ फैलाया जा रहा है।

यह एक सहभागी कॉलम होगा, जिसमें विभिन्न स्रोतों से सामग्री एकत्र की जाएगी। आप किसी भी विषय पर तथ्यों और आँकड़ों के साथ लेख भेजने के लिए आमंत्रित हैं। हम न तो विवादों में उलझेंगे, और न ही प्रतिआक्रमण करेंगे। हम तथ्यात्मक लेख लिखेंगे जिससे झूठ फैलानेवालों को यह अहसास हो कि सत्य के सामने असत्य टिक नहीं सकता। हमें आशा है कि हमारी यह पहल सार्वजनिक बहस में झूठ की बाढ़ को रोकने वाला वातावरण बनाने में सहायक सिद्ध होगी। पहला लेख संलग्न है। - ***संपादक*****

****

नेहरू और डॉ. राजेन्द्र प्रसाद ने पटेल के अंतिम संस्कार में भाग लिया

लेखक : रवि विश्वेश्वरैया

सरदार वल्लभभाई पटेल की पुण्यतिथि पर एक बार फिर यह झूठ फैलाया जा रहा है कि जवाहरलाल नेहरू उनके अंतिम संस्कार में शामिल नहीं हुए थे और उन्होंने राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्र प्रसाद को 'लौह पुरुष' के अंतिम संस्कार में जाने से रोकने की कोशिश की थी।

वास्तव में, जवाहरलाल नेहरू, राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्र प्रसाद, चक्रवर्ती राजगोपालाचारी और लोकसभा अध्यक्ष जी.वी. मावलंकर—सभी ने सरदार पटेल के अंतिम संस्कार में भाग लिया था।

यहाँ 15 दिसंबर 1950 को प्रातः 10:45 बजे संसद में दिया गया जवाहरलाल नेहरू का भाषण प्रस्तुत है, जिसमें उन्होंने मुंबई में प्रातः 9:37 बजे सरदार वल्लभभाई पटेल के निधन की सूचना सदन को दी। उस समय उपाध्यक्ष एम. अनंतशयनम अय्यंगार आसन पर थे, क्योंकि अध्यक्ष जी.वी. मावलंकर पहले ही मुंबई जाने की तैयारी के लिए रवाना हो चुके थे।

प्रधानमंत्री (श्री जवाहरलाल नेहरू) का वक्तव्य :

"मुझे, महोदय, आपको और इस सदन को अत्यंत शोकपूर्ण समाचार देना है।

आज प्रातः 9 बजकर 37 मिनट पर, उपप्रधानमंत्री सरदार वल्लभभाई पटेल का बंबई नगर में निधन हो गया। तीन दिन पहले हम में से कई लोग उन्हें विलिंगडन हवाई अड्डे से विदा करने गए थे और हमें आशा थी कि बंबई में उनका प्रवास उन्हें उस स्वास्थ्य को पुनः प्राप्त करने में सहायक होगा, जो कठोर परिश्रम और निरंतर चिंता के कारण अत्यंत क्षीण हो गया था। एक-दो दिन तक ऐसा लगा कि उनकी स्थिति में सुधार हो रहा है, लेकिन आज तड़के उन्हें फिर से आघात पहुँचा और उनके महान जीवन की गाथा यहीं समाप्त हो गई।

मैं, जो कई वर्षों से इस बेंच पर उनके साथ कंधे से कंधा मिलाकर बैठा हूँ, जब उनकी खाली सीट देखूँगा तो मुझे एक गहरी रिक्तता और अकेलापन महसूस होगा। इस अवसर पर मैं इससे अधिक कुछ नहीं कह सकता।

मेरे सहकर्मी श्री राजगोपालाचारी और मैं शीघ्र ही बंबई जाकर उन्हें अपनी अंतिम श्रद्धांजलि अर्पित करने जा रहे हैं। मुझे यह भी ज्ञात हुआ है कि राष्ट्रपति महोदय ने भी तुरंत बंबई जाने का निर्णय लिया है, और अध्यक्ष महोदय आज तड़के ही वहाँ के लिए प्रस्थान कर चुके हैं।

(लेखक के पिता श्री एच.वाई. शारदा प्रसाद, जवाहरलाल नेहरू की 'सेलेक्टेड वर्क्स' के संपादकों में से थे।)

भारतीय गणतंत्र और राष्ट्र की चेतना का ह्रास

चन्द्र कुमार एडवोकेट

भारत का गणतंत्र 75 वर्ष पूरे कर अब 76वें में प्रवेश कर चुका है—और यह महज़ कैलेंडर बदल जाने का पड़ाव नहीं, बल्कि यह एक ऐसा ऐतिहासिक शिखर है जहाँ से खड़े होकर हम अपनी राजनीतिक परिपक्वता, सामाजिक चेतना, आर्थिक प्रगति और राष्ट्रीय आत्मविश्वास की संपूर्ण यात्रा का विहंगम दृश्य देख सकते हैं।

यह यात्रा आसान नहीं थी, यह संघर्षों से सनी, आदर्शों से भरी और भविष्य को आकार देने वाली दृढ़ इच्छाशक्ति की अमिट कहानी है।

26 जनवरी 1950 में लागू हुआ "भारतीय संविधान" केवल राष्ट्र के संचालन का विधिक स्तावेज़ नहीं था, बल्कि सदियों की गुलामी के बाद धूल झाड़कर उठ खड़े हुए एक स्वतन्त्र राष्ट्र का आधुनिक सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक घोषणापत्र था। दुनिया की सबसे बड़ी विविध भाषा भाषी आबादी वाले देश को एक साझा राष्ट्रीय धागे में पिरोना नहीं,
बल्कि उसे न्याय समानता और अभिव्यक्ति के अधिकारों की मजबूत नींव पर टिकाना—वह कार्य जो अत्यंत दुष्कर, असंभव सा लगता था उसे हमारे देश के संविधान निर्माताओं ने न केवल सिद्ध किया, बल्कि उसे अपनी ताकत में बदल दिया।

हंला कि यह भारतीय संविधान 26 जनवरी 1950 से लागू होने के बाद से अब तक कुल 106 अलग-अलग संविधान संशोधन पारित किया जा चुका हैं, जो संविधान के विभिन्न भागों, अनुच्छेदों और प्रावधानों में बदलाव एवं सुधार की पटकथा का
बयान करते हैं।

- संविधान में पहला संशोधन 1951 में किया गया था।
- सबसे हाल का (106वाँ) संशोधन 2023 में किया गया था।

संविधान में संशोधन की प्रक्रिया अनुच्छेद 368 के तहत निर्धारित है, जिसमें संसद को अलग-अलग परिस्थितियों में विशेष या साधारण बहुमत से संशोधन करने का अधिकार मिलता है।

इस कालखंड में भारत ही नहीं बल्कि पूरी दुनिया ने सत्ताओं को उठते–गिरते देखा, नेतृत्व बदलते देखा, गठबंधन–युग का राजधर्म भी देखा, आपातकाल और फिर जनता की इच्छाशक्ति से लोकतंत्र की स्वर्णिम सुबह भी देखी। दुनिया में बहुत कम लोकतंत्र ऐसे हैं जो इतने गहरे उतार–चढ़ाव के बाद भी भारतीय लोकतंत्र और अधिक मजबूत होकर उभरा हो। भारत दुनिया को यह भी संदेश देने में भी कामयाब रहा है कि हमारे लोकतंत्र की जड़ें अनादि काल से बहुत गहरी रही हैं क्योंकि हमेशा से हम प्रकृति के नियमों का पालन करते आ रहे हैं।

हमारी आर्थिक यात्रा भी इसी प्रकार विस्मयकारी रही। आज़ादी के तुरंत बाद गरीबी, अभाव, शिक्षा की अनेकों कमीयां और अनियंत्रित अर्थव्यवस्था हमारे आगे चुनौतियों की दीवार बन कर खड़ी थी।

यह यात्रा आसान नहीं थी, यह संघर्षों से सनी, आदर्शों से भरी और भविष्य को आकार देने वाली दृढ़ इच्छाशक्ति की अमिट कहानी है।

सामाजिक परिवर्तन भी सबसे बड़ी व गहरी उपलब्धि है। जाति, लिंग, परंपरा और आर्थिक असमानताओं के बावजूद भारत ने आगे बढ़ने का रास्ता खोजा, जो संविधान प्रदत्त है, हमारा संविधान शिक्षा, स्वास्थ्य, महिला नेतृत्व, युवाओं की आकांक्षाएँ भी पूरी करते हुए दिखाई दे रहा था, जो भारत के सामाजिक इंजन

की तरह क्रिया शील था किन्तु वह इंजन भी अब बर्बादी के कगार पर है!

फिर भी अभी बहुत सी चुनौतियाँ बाकी हैं, जिसमें सामाजिक आर्थिक असमानताएँ आज भी हमारे-आपके सामने अट्टहास करते खड़ी हैं। संविधान किसी राष्ट्र का केवल विधिक ढांचा नहीं होता, वह उस समाज की सामूहिक अंतरात्मा होता है। भारत का संविधान शोषण के अंधकार से निकली उस मशाल का नाम है, जिसने सदियों की गुलामी, असमानता और अन्याय के विरुद्ध एक सभ्य राष्ट्र का मार्ग प्रशस्त किया। बावजूद इसके आज सबसे बड़ा और सबसे असहज प्रश्न यही है कि—क्या वह मशाल बुझाई जा रही है? क्या संविधान पर सुनियोजित हमला हो रहा है, और क्या उसकी विकृति को सामान्य और स्वीकार्य बना दिया गया है?

संविधान पर हमला अचानक नहीं होता, न ही वह खुले विद्रोह के रूप में सामने आता है। यह हमला धीमा, चुपचाप और रणनीतिक होता है। कभी अध्यादेशों के ज़रिये, कभी संस्थाओं की नियुक्तियों में हस्तक्षेप से, कभी असहमति को कुचलने वाले कानूनों से। सत्ता जब स्वयं को संविधान से ऊपर मानने लगती है, तभी लोकतंत्र की आत्मा पर पहला प्रहार होता है।

संविधान की आत्मा केवल अनुच्छेदों में नहीं, बल्कि उसके मूल्यों में बसती है—न्याय, स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व। जब इन मूल्यों को सत्ता की सुविधा के अनुसार मोड़ा जाता है, तब संविधान एक जीवंत दस्तावेज़ नहीं, बल्कि सत्ता का औपचारिक मुखौटा बनकर रह जाता है।

संविधान की सबसे बड़ी ताकत उसकी संवेदनशीलता है—कमज़ोर के पक्ष में खड़े होने की क्षमता। पर आज उसी संवेदनशीलता को "कमज़ोरी" कहकर खारिज किया जा रहा है। अल्पसंख्यकों के अधिकार, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, निजता का अधिकार—इन सबको या तो संदिग्ध बना दिया गया है या राष्ट्रहित के नाम पर सीमित। यह संविधान की व्याख्या नहीं, उसकी विकृति है।

विकृति तब और गहरी हो जाती है जब संवैधानिक संस्थाएँ—संसद, न्यायपालिका, चुनाव आयोग और मीडिया—अपनी स्वायत्त भूमिका छोड़कर सत्ता की अनुगामी बन जाएँ। संसद बहस का मंच न रहकर केवल मुहर लगाने की संस्था बन जाए, मीडिया प्रश्न पूछने के बजाय प्रचार का औज़ार बन जाए, और असहमति को देशद्रोह कहकर जेल की सलाखों के पीछे धकेल दिया जाए—तो समझ लेना चाहिए कि संविधान जीवित होते हुए भी घायल है।

सबसे खतरनाक संकेत नागरिकों का मौन है। जब लोग अधिकारों के हनन को "जरूरी सख्ती" मानने लगें, जब सवाल पूछना जोखिम और चुप रहना समझदारी समझा जाए, तब लोकतंत्र का पतन तेज़ी से शुरू हो जाता है। इतिहास गवाह है-तानाशाही सबसे पहले संविधान नहीं बदलती, वह नागरिकों की चेतना बदलती है।

संविधान की आत्मा केवल अनुच्छेदों में नहीं, बल्कि उसके मूल्यों में बसती है—न्याय, स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व। जब इन मूल्यों को सत्ता की सुविधा के अनुसार मोड़ा जाता है, तब संविधान एक जीवंत दस्तावेज़ नहीं, बल्कि सत्ता का औपचारिक मुखौटा बनकर रह जाता है।

यह भी स्मरण रखना होगा कि संविधान की रक्षा केवल न्यायालयों, वकीलों या विद्वानों की ज़िम्मेदारी नहीं है। यह हर जागरूक नागरिक का नैतिक दायित्व है। सवाल पूछना, असहमति रखना, सत्ता से जवाब माँगना—ये देशद्रोह नहीं, बल्कि सच्चा राष्ट्रप्रेम है। आज आवश्यकता इस बात की है कि हम संविधान को केवल पूजा या शपथ की वस्तु न बनाएँ, बल्कि उसे जीएँ। उसे सत्ता के हाथों की तलवार न बनाएं। बल्कि आम नागरिकों के अधिकारों की ढाल बनाएं। क्योंकि जिस दिन संविधान की आत्मा पर अंतिम वार हुआ, उस दिन लोकतंत्र केवल शब्दों में बचेगा-वास्तविकता में नहीं।

संविधान बचेगा, तभी भारत एक गणराज्य रहेगा। अन्यथा इतिहास हमें उस पीढ़ी के रूप में याद रखेगा, जिसने सबसे महान दस्तावेज़ को चुपचाप विकृत होते देखा और कुछ नहीं किया।यह समझ होना जरूरी है कि संविधान पर हमला तोपों से नहीं होता, कई बार यह राष्ट्र हित के नाम पर नीतियों के आवरण में छुपा होता है।जब बहुमत को सत्य मानते हुए नागरिक संविधान से विमुख होने लगे, आधिकारों के बदले मौन साध ले? तब समझिए लोकतंत्र भीतर से खोखला हो रहा हैऔर संविधान जीवन्त होते हुए भी निष्प्राण हो जाता है।

■■■

पुतिन यात्रा: बदलता विश्व परिदृश्य और भारत

मीडिया मैप न्यूज़ नेटवर्क

रूस के राष्ट्रपति व्लादिमीर पुतिन की हालिया भारत यात्रा को औपचारिक कूटनीतिक कार्यक्रम भर मानना बड़ी भूल होगी। 27 घंटे की इस यात्रा के पीछे अंतरराष्ट्रीय राजनीति, वैश्विक आर्थिक पुनर्संतुलन, सैन्य सहयोग, तकनीकी साझेदारी और शक्ति-समीकरण के कई गहरे निहितार्थ छिपे। यही कारण है कि इस यात्रा को लेकर भारतीय और अंतरराष्ट्रीय मीडिया में असाधारण दिलचस्पी दिखाई दी।

बीते कुछ वर्षों में वैश्विक राजनीति का केंद्र तेजी से खिसक रहा है। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद अमेरिका ने जिस आर्थिक, राजनीतिक और तकनीकी वर्चस्व की स्थापना की थी, वह अब पहले जैसी मजबूत नहीं रही। चीन का उभार, रूस की आक्रामक विदेश नीति और विकासशील देशों की नई आकांक्षाएँ अमेरिकी प्रभुत्व को चुनौती दे रही हैं।

इसी संदर्भ में पुतिन की भारत यात्रा को देखा जाना चाहिए। रूस यह स्पष्ट संदेश देना चाहता है कि यूक्रेन युद्ध के चलते लगाए गए पश्चिमी प्रतिबंधों के बावजूद वह अंतरराष्ट्रीय मंच पर अकेला नहीं है। भारत के साथ गहरी दोस्ती इस संदेश को मजबूती देती है कि रूस के पास अब भी बड़े और प्रभावशाली साझेदार मौजूद हैं।

पुतिन का एक प्रमुख प्रयास भारत और चीन के बीच तनाव को कम करने की दिशा में भी है। रूस मानता है कि यदि भारत, चीन और रूस किसी साझा मंच पर सहयोग करें—और उन्हें ब्राज़ील व दक्षिण अफ्रीका जैसे देशों का समर्थन मिले—तो अमेरिका के नेतृत्व वाले वैश्विक ढांचे को गंभीर चुनौती दी जा सकती है।

ब्रिक्स (BRICS) जैसे मंच इसी सोच का परिणाम हैं, जहाँ डॉलर के प्रभुत्व को कम करने और वैकल्पिक आर्थिक संरचना बनाने पर चर्चा होती है।

भारत और रूस ने 2030 तक आपसी व्यापार को 100 अरब डॉलर तक पहुँचाने का लक्ष्य रखा है। इसमें ऊर्जा, रक्षा, तकनीक और औद्योगिक सहयोग प्रमुख स्तंभ हैं। भारत पहले ही रूस से रियायती दरों पर तेल खरीद रहा है, जिससे उसे बड़ा आर्थिक लाभ मिला है। रूस के लिए भारत एक विशाल और भरोसेमंद बाजार है, जबकि भारत को रूस से वह सैन्य हार्डवेयर और उन्नत तकनीक मिल सकती है, जो अमेरिका और पश्चिमी देश अक्सर देने से हिचकिचाते हैं।

भारत की सैन्य शक्ति का एक बड़ा हिस्सा आज भी रूसी तकनीक पर आधारित है। मिसाइल प्रणाली, लड़ाकू विमान, पनडुब्बियाँ और रक्षा उपकरण—इन सभी में रूस की भूमिका ऐतिहासिक रही है। इसके साथ ही भारत अब केवल आयातक नहीं रहना चाहता। "मेक इन इंडिया" के तहत भारत चाहता है कि रक्षा उपकरणों का निर्माण देश में हो। रूस इस दिशा में तकनीकी हस्तांतरण और संयुक्त उत्पादन के लिए अपेक्षाकृत अधिक खुला नजर आता है।

अमेरिका की सख्त वीज़ा नीतियों और घटते अवसरों के बीच भारत के तकनीकी पेशेवरों के लिए रूस एक वैकल्पिक गंतव्य बन सकता है। रूस विशाल भू-भाग

वाला देश है, लेकिन जनसंख्या कम है। खनिज संसाधनों, उद्योग और बुनियादी ढांचे के विकास के लिए उसे कुशल मानव संसाधन की भारी जरूरत है। यदि भारतीय इंजीनियर, वैज्ञानिक और तकनीकी विशेषज्ञ रूस की ओर रुख करते हैं, तो यह दोनों देशों के लिए लाभकारी हो सकता है—भारत को रोजगार के नए अवसर और रूस को तकनीकी क्षमता।

भारत–रूस संबंध, जो सोवियत काल से चले आ रहे हैं वैश्विक राजनीति के उतार–चढ़ाव के बावजूद अक्सर टिके रहे हैं। लेकिन पिछले कुछ वर्षों में ये संबंध एक व्यक्ति-डोनाल्ड ट्रंप—की नीतियों से प्रभावित और कभी–कभी दबाव में रहे हैं। ट्रंप द्वारा भारतीय वस्तुओं पर लगाए गए दंडात्मक शुल्क, रूस से भारत के तेल आयात को लेकर उनकी लगातार शंका, और आर्थिक दबाव को हथियार के रूप में इस्तेमाल करने की प्रवृत्ति ने भारत–रूस के हर कदम पर अपनी छाप छोड़ी है। यहां तक कि पुतिन का दिल्ली आने वाला विमान भी विदेशी मीडिया में "सबसे अधिक मॉनिटर की गई उड़ानों" में से एक बताया गया, जिससे यह स्पष्ट हुआ कि वाशिंगटन, मॉस्को–दिल्ली की धुरी पर कितनी बारीकी से नजर रख रहा है। ट्रंप की छाया वाकई लंबी है।

पुतिन की यात्रा सोवियत युग की भावनात्मक साझेदारी का पुनरुत्थान नहीं है। यह, ग्लोबल ट्रेड रिसर्च इनिशिएटिव के शब्दों में, "जोखिम, आपूर्ति श्रृंखलाओं और आर्थिक सुरक्षा पर बातचीत" है।

दिल्ली में पुतिन को भव्य औपचारिक स्वागत मिला—सार्वजनिक गर्मजोशी और आत्मविश्वास से भरे बयान सुर्खियों में रहे। लेकिन रक्षा समझौते—विशेषकर नए परमाणु पनडुब्बी सौदे—का न होना यह दिखाता है कि वाशिंगटन और मॉस्को के बीच भारत कितनी सावधानी से संतुलन साध रहा है।

फिर भी, इस यात्रा ने रूस–नेतृत्व वाले यूरेशियन इकनॉमिक यूनियन (EAEU) के साथ भारत की मुक्त व्यापार वार्ताओं को गति दी। भारतीय निर्यात लगातार दो महीने गिर गए हैं, ट्रंप के 50% शुल्क के कारण निर्यातकों पर दबाव है, और घरेलू विनिर्माण धीमा पड़ रहा है—ऐसे में भारत नए बाज़ारों की खोज में तत्पर है। EAEU अचानक अधिक महत्त्वपूर्ण हो गया है।

सबसे प्रतीकात्मक उपलब्धि पुतिन की वह पुनर्पुष्टि थी कि रूस कुडनकुलम में चार और परमाणु रिएक्टरों का निर्माण पूरा करेगा। पहले दो रिएक्टर पहले ही चालू हो चुके हैं। यह भारत की दीर्घकालिक ऊर्जा सुरक्षा में रूस की केंद्रीय भूमिका को फिर से स्थापित करता है।

द्विपक्षीय व्यापार 2020 के 8.1 अरब डॉलर से बढ़कर 2024–25 में 68.7 अरब डॉलर के ऐतिहासिक स्तर पर पहुँच गया है—मुख्यतः तेल के कारण। लेकिन भारत का रूस को निर्यात अभी भी अत्यंत कम है—सिर्फ कुछ सौ मिलियन डॉलर। असंतुलन स्पष्ट है।

पुतिन की यात्रा, भले ही सीमित उपलब्धियों वाली रही हो, लेकिन भारत ने इससे रूस के साथ अपने "विशेष और विशेषाधिकार प्राप्त रणनीतिक साझेदारी" को फिर से पुष्ट किया और अपनी रणनीतिक स्वायत्तता का संकेत दिया। फिर भी पृष्ठभूमि जटिल बनी हुई है—

* ट्रंप के अप्रत्याशित निर्णय

* यूरोपीय संदेह

* कमजोर होते रुपये से आर्थिक दबाव

* अफगानिस्तान और ईरान में क्षेत्रीय

अस्थिरता क्या यह एक नए भू-राजनीतिक संतुलन की शुरुआत है—या अगले बड़े उतार–चढ़ाव से पहले की शांति? चाहे परिणाम शांति, संघर्ष या अस्थायी स्थिरता में से कोई भी हो, इतना तय है कि वाशिंगटन और मॉस्को के बीच भारत की यह संतुलन साधना अब और अधिक सूक्ष्म और और अधिक निर्णायक होती जा रही है।

शांत रहना सीखें,
आपका गुस्सा किसी और
की जीत है.....

■■■

महात्मा गांधी हत्याकांड की पुनः जांच की मांग

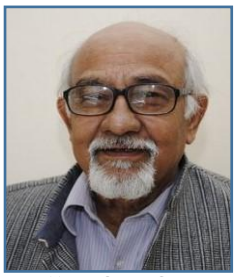

डॉ सतीश मिश्रा

महात्मा गांधी की हत्या को सात दशक से अधिक समय बीत चुका है, लेकिन यह प्रश्न आज भी अनुत्तरित है कि क्या उस अपराध का पूरा सच हमारे सामने आ चुका है, या हमें केवल एक सुविधाजनक और सीमित कथा थमा दी गई। समय-समय पर सामने आने वाले दस्तावेज़, शोध और मीडिया रिपोर्टें संकेत देती हैं कि गांधीजी की हत्या को सिर्फ़ नाथूराम गोडसे नामक एक व्यक्ति की सनक बताकर समाप्त कर देना इतिहास का खतरनाक सरलीकरण है।

अब जो तथ्य उजागर हो रहे हैं, वे गोडसे की उस छवि को भी चुनौती देते हैं, जिसे एक वैचारिक रूप से सुस्पष्ट, संगठित और दृढ़ निश्चयी हत्यारे के रूप में गढ़ा गया। वास्तविकता यह बताती है कि गोडसे एक बेरोज़गार युवक था, जो अपने शैक्षणिक जीवन में असफल रहा, जिसके पास न गहन राजनीतिक समझ थी और न ही जीवन का कोई स्पष्ट उद्देश्य। वह अपने भाई की एक छोटी-सी दुकान की मामूली आमदनी पर निर्भर था। वही दुकान कुछ असंतुष्ट, हताश और भटके हुए लोगों के जमावड़े का ठिकाना भी थी।

सबसे गंभीर प्रश्न उस दस्तावेज़ को लेकर है- "Why I Killed Gandhi"। लंबे समय तक यह माना गया कि यह दस्तावेज़ स्वयं गोडसे ने लिखा और अदालत में अपनी रक्षा के लिए प्रस्तुत किया। लेकिन अब इस दावे पर संदेह गहराता जा रहा है। क्या सचमुच यह लेखन उसी व्यक्ति की बौद्धिक क्षमता और भाषा का परिणाम था? या किसी और ने उसके विचारों को शब्द दिए, उसकी भाषा गढ़ी और उसे एक वैचारिक हत्यारे के रूप में स्थापित किया? क्या अदालत में उसकी कानूनी रणनीति उसी की समझ का परिणाम थी, या उसके पीछे कोई संगठित तंत्र सक्रिय था? असल सवाल गोडसे नहीं, बल्कि गोडसे के पीछे खड़े लोग हैं। कौन थे वे, जिन्होंने उसकी सोच को दिशा दी? किसने उसे यह यक़ीन दिलाया कि राष्ट्रपिता की हत्या एक "देशभक्ति" का कार्य है? किसने अदालत में उसके बचाव का खाका तैयार किया, और किसके हित में यह पूरा नैरेटिव रचा गया? यह मान लेना कि एक असफल और बेरोज़गार युवक ने अकेले अपने दम पर गांधी जैसे वैश्विक नैतिक प्रतीक की हत्या कर दी, इतिहास-बोध का घोर अपमान है। ऐसे अपराध व्यक्तिगत कुंठा से नहीं, बल्कि संगठित नफ़रत, वैचारिक उकसावे और सुनियोजित समर्थन से जन्म लेते हैं। यदि गोडसे केवल एक कठपुतली था, तो कठपुतली चलाने वाले हाथ आज भी इतिहास के अंधेरे कोनों में छिपे हो सकते हैं।

इसीलिए आज आवश्यकता है कि उस विभत्स हत्या को भावनाओं और राजनीतिक पूर्वाग्रहों से ऊपर उठकर देखा जाए। क्या महात्मा गांधी की हत्या की पुनः जांच नहीं होनी चाहिए? क्या उन सभी दस्तावेज़ों, गवाहियों और बंद फाइलों को फिर से नहीं खोला जाना चाहिए, जो अब तक अनछुए हैं? यह मांग किसी व्यक्ति या विचारधारा के विरुद्ध नहीं, बल्कि सत्य और इतिहास के प्रति ईमानदारी की मांग है।

गांधी केवल एक व्यक्ति नहीं थे; वे एक विचार, एक चेतना और एक नैतिक कसौटी थे। जब तक हम यह नहीं जान लेते कि गांधी को वास्तव में किसने और क्यों मारा, तब तक हमारी लोकतांत्रिक आत्मा भी अधूरी रहेगी।यह भी एक कड़वा सत्य है कि महात्मा गांधी की हत्या 1948 में हुई थी, लेकिन उनके व्यक्तित्व और विचारों को मिटाने की कोशिश आज भी जारी है। सवाल यह नहीं कि उनके विचारों पर हमला हो रहा है या नहीं; सवाल यह है कि क्या हम उस हमले के ख़िलाफ़ खड़े होने का साहस रखते हैं या नहीं। क्योंकि गांधी का बचाव करना दरअसल अपने लोकतंत्र, अपनी नैतिकता और अपने भविष्य का बचाव करना है।

(डॉ. सतीश मिश्रा वरिष्ठ पत्रकार और अनुभवी राजनीतिक विश्लेषक हैं। वे ऑब्ज़र्वर रिसर्च फ़ाउंडेशन में सीनियर फ़ेलो रह चुके हैं।)

■■■

मॉब लिंचिंग: क्रूर राजनीति का नंगा सच

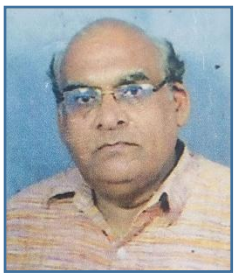

डॉ. आनंद प्रकाश तिवारी

गांधी और बुद्ध की भूमि में आज जो दृश्य सामने आ रहे हैं, वे किसी भी संवेदनशील नागरिक को झकझोर देने वाले हैं। मॉब लिंचिंग, बुलडोज़र कार्रवाई लक्षित हिंसा और सत्ता-समर्थित दमन—ये सब किसी आकस्मिक अराजकता के परिणाम नहीं, बल्कि एक सोची-समझी राजनीतिक रणनीति का हिस्सा प्रतीत होते हैं। सवाल यह नहीं है कि ये घटनाएँ क्यों हो रही हैं, बल्कि यह है कि इन्हें होने दिया क्यों जा रहा है और किसके हित में।

हाल की नवादा की घटना ने इस सच्चाई को और उजागर किया है। जिस तरह एक व्यक्ति को भीड़ ने अमानवीय यातनाएँ दीं—पैरों के नाखून प्लास से उखाड़े गए, हाथ-पैर तोड़े गए, छाती पर चढ़कर पसलियाँ कुचली गईं—वह किसी सभ्य समाज की कल्पना से परे है। हैरानी इस बात की भी है कि वह व्यक्ति इतनी यातनाओं के बाद भी कई दिनों तक जीवित रहा। यह क्रूरता केवल एक अपराध नहीं, बल्कि एक संदेश है—डर का, दमन का, और सत्ता के संरक्षण का।

बिहार की राजनीति में हालिया घटनाक्रम इस संदर्भ में अहम हैं। चुनावों के बाद मुख्यमंत्री नीतीश कुमार से गृह मंत्रालय का प्रभार हटाकर सम्राट चौधरी को सौंपा जाना केवल प्रशासनिक फेरबदल नहीं था। इसके बाद जिस तरह राज्य के विभिन्न शहरों और कस्बों में बाज़ारों को निशाना बनाकर बुलडोज़र चलाए गए, ठेलों तक को योजनाबद्ध ढंग से तोड़ा गया, वह स्पष्ट संकेत देता है कि यह सब अचानक नहीं हुआ। सवाल उठता है—क्या इन बाज़ारों को खाली कराकर बड़ी कॉर्पोरेट ताकतों के लिए ज़मीन तैयार की जा रही है?

सरकार अक्सर यह दावा करती है कि वह सभी नागरिकों को समान दृष्टि से देखती है। लेकिन ज़मीनी सच्चाई यह है कि दमन का यह "समान" मॉडल आम जनता के खिलाफ है। छोटे व्यापारी, रेहड़ी-पटरी वाले, कमजोर तबके—इन सबको उजाड़कर बड़े घरानों के लिए रास्ता साफ किया जा रहा है। इसके बदले में सत्ता को क्या मिलता है, यह किसी से छिपा नहीं। हाल ही में एक बड़े औद्योगिक समूह को सेमीकंडक्टर यूनिट की अनुमति दिए जाने के कुछ ही दिनों के भीतर सैकड़ों करोड़ रुपये का चंदा सत्ताधारी दल को मिलना, इस गठजोड़ की ओर साफ इशारा करता है। आज जब एक राजनीतिक दल के पास बैंकों में हज़ारों करोड़ रुपये जमा हैं और विपक्षी दल संसाधनों के लिए जूझ रहे हैं, तो लोकतंत्र की बराबरी केवल कागज़ों में रह जाती है।

मॉब लिंचिंग और बुलडोज़र की कार्रवाइयाँ एक-दूसरे से जुड़ी हुई हैं। एक ओर भय का वातावरण बनाया जा रहा है, दूसरी ओर संपत्ति और आजीविका छीनी जा रही है। यह सब इस नाम पर कि सरकार कानून-व्यवस्था बनाए रख रही है। लेकिन जब अख़लाक, बिलकिस बानो जैसे मामलों में न्याय की प्रक्रिया को कमजोर किया जाता है, एफआईआर वापस लेने की कोशिशें होती हैं, दोषियों का महिमामंडन किया जाता है, तब सवाल उठता है कि कानून किसके लिए है?

यह समस्या केवल किसी एक राज्य या घटना तक सीमित नहीं है। यह एक राष्ट्रीय पैटर्न बनता जा रहा है। मीडिया का एक बड़ा हिस्सा या तो चुप है या सत्ता की भाषा बोल रहा है। अख़बारों और टीवी चैनलों पर इन मुद्दों पर गंभीर विश्लेषण दुर्लभ हो गया है। विपक्ष को छोटे-छोटे मामलों में उलझाकर उसकी आवाज़ दबा दी जाती है। ■■■

पुण्यतिथि 11 जनवरी

शास्त्री जी मेरे पिता, मेरे गुरु और मेरे आदर्श

(मीडिया मैप के संवादाता जगदीश गौतम को दिए गए साक्षात्कार पर आधारित)

सुनील शास्त्री

शास्त्री जी, मेरे बाबूजी, उनकी ईमानदारी, सरलता और सादगी आज भी लोगों के दिलों में बसी है। यही कारण है कि आज भी उनके प्रति लोगों का अटूट प्यार है। उन्हें देखकर लोगों को यह महसूस होता था कि वह किसी बड़े नेता से नहीं, बल्कि अपने ही बीच के एक साधारण व्यक्ति से मिल रहे हैं। शास्त्री जी की यही विनम्रता उन्हें जनता के दिलों में खास स्थान दिलाती थी। लोगों को लगता था कि वह हमारे ही बीच के एक आदमी हैं, जो आज देश की जिम्मेदारी संभाल रहे हैं।

मुझे वह घटना आज भी याद है जब देश में अनाज की कमी थी, और लोग चिंता में थे कि आगे क्या होगा। उस कठिन समय में भी शास्त्री जी ने अपने नेतृत्व और सादगी से देश को दिशा दिखाई।लेकिन बाबूजी ने उस समय 'जय जवान, जय किसान' के नारे को देखते हुए देश के किसानों और जवानों को एक महत्वपूर्ण संदेश दिया। जवानों से उनका मतलब सिर्फ सेना से नहीं था, बल्कि युवा पीढ़ी से भी था। उनके मन में यह विश्वास था कि देश को सही दिशा में आगे ले जाने का काम युवा ही करेंगे। यही वजह थी कि वह युवा पीढ़ी पर पूरा विश्वास करते थे।

उन्होंने एक बार मुझसे कहा था, और मुझे आज भी याद है, जब मैं बाबूजी की टेबल पर लिखा हुआ एक आदर्श वाक्य देखता था, तो मन में बार-बार यह विचार आता था कि क्यों न मैं बाबूजी से पूछूं कि मैं अपने जीवन का आदर्श वाक्य क्या बनाऊं? शास्त्री जी ने गुरु नानक जी का वाक्य रखा था – "नानक नन्ने ही रहो, जैसे नन्ही दूब।
बड़े-बड़े बही जात हैं, दूब खूब की खूब।" यह वाक्य दिल को छू लेने वाला था। इसके बगल में बाबूजी ने इसका अंग्रेजी अनुवाद भी लिखा था – "**Remain a small one, as smaller grass, and other plants will stay away.**" मैं इस वाक्य से बहुत आकर्षित होता था, पर पूरी तरह उसका अर्थ समझ नहीं पाता था। एक दिन मैंने बाबूजी का हाथ पकड़ लिया और कहा, "बाबूजी, आज आप दफ्तर नहीं जा सकते, मुझे इन पंक्तियों का अर्थ बताना ही पड़ेगा।"

बाबूजी ने कहा, "सुनील, मेरी मीटिंग है, जाना होगा। बाद में बात करेंगे।" मैंने कहा, "हर बार मीटिंग, हर दिन मीटिंग। आपका बेटा कब तक इंतजार करेगा? बस एक बार बता दीजिए।" तभी उन्होंने मेरे कंधे पर हाथ रखा और प्यार से कहा, "देखो, नन्हे पौधे की तरह बनो। धूप कितनी भी तेज़ हो, वो हमेशा हरा रहता है। मैंने कभी सुंदर फूल बनने की कोशिश नहीं की, क्योंकि फूल तो आकर्षित करता है, लेकिन उसकी खुशबू कुछ समय की होती है। असली सेवा उस पौधे की है जो सालों

तक हरा रहता है, जैसे हमें अपने देश की सेवा में हर दिन खड़ा रहना चाहिए।"

बाबूजी ने जब यह बात कही, तो मैं बेहद प्रभावित हो गया और उनसे कहा, "बाबूजी, आपने कितनी अद्भुत पंक्तियाँ अपने जीवन का लक्ष्य बना लीं, और इसी के कारण आज आपने देश में हरियाली फैला दी। आपने 'जय जवान, जय किसान' का नारा दिया, जो आज भी लोगों को प्रेरित करता है।" बाबूजी ने मुस्कुराते हुए कहा, "हाँ, क्योंकि मेरा सपना था कि देश में हर जगह हरियाली हो, लोग किसानी करें, कुछ न कुछ उगाएं, सिर्फ चावल ही नहीं, बल्कि फल, सब्जियाँ और अनाज भी।

जब देश हरा-भरा होगा, तभी उसकी समृद्धि टिकाऊ होगी। यही सोचकर मैंने 'जय जवान, जय किसान' का नारा अपनाया।" तब मैंने एकदम दूसरा सवाल किया, "तो मेरे लिए आप क्या संदेश देंगे?"

जब मैंने बाबूजी से पूछा, "मैं किस आदर्श पर चलने की कोशिश करूँ?" तो उन्होंने गंभीरता से कहा, "तुमने बहुत बड़ा सवाल पूछा है, इसके उत्तर में समय लेगा।" फिर उन्होंने ताजमहल का उदाहरण देते हुए कहा, "दुनिया भर से लोग ताजमहल देखने आते हैं और कितने लोग ताजमहल देखने आते रहेंगे , लेकिन अगर एक दिन समय की मार से ताजमहल खंडहर में बदल जाए, तब क्या लोग उसके बुनियाद रखने वालों को याद करेंगे? नहीं। मैं उत्तर बाबूजी के आँखों की तरफ देख कर उसमें से ढूंढ रहा था। बाबूजी ने कहा असली बुनियाद वे नींव के पत्थर हैं जिनके ऊपर ताजमहल खड़ा हुआ है।" उन्होंने मुझे समझाया, "मैं चाहता हूँ कि तुम भी मजबूत नींव की तरह बनो, जिस पर भारत का भविष्य खड़ा हो सके। भारत का हर युवा एक नींव का पत्थर बने और मानवता की सेवा के लिए मजबूत नींव रखे। यही सच्चा आदर्श है।"

जब शास्त्री जी जैसे लाखों लोग होंगे, तभी हमारा देश सच्चाई और सादगी के रास्ते पर तेज़ी से आगे बढ़ेगा और हर काम को ईमानदारी से पूरा करेगा। तब देश का नाम पूरी दुनिया में चमकेगा। ■■■

मध्यवर्ग में संयम और सामाजिक चेतना का अभाव

प्रस्तुति : जगदीश्वर चतुर्वेदी

प्रसिद्ध आलोचक मैनेजर पांडेय का मानना है "भारतीय समाज पिछले बीस वर्षों से आंधी की गति से पूंजीवाद और अंतरराष्ट्रीय पूंजी की गिरफ्त में जिस तरह आया है उससे बहुत सारी चीजें उलट-पुलट गईं. पूंजीवाद स्मृतियों को महत्व नहीं देता क्योंकि उसके अपने इतिहास की स्मृतियां इतनी भयावह हैं कि उनसे गुजरना गहरा अपराधबोध पैदा करता है. इसलिए पूंजीवाद हमेशा वर्तमान और भविष्य की चिंता करता है.

कुल मिलाकर आज पूंजीवाद के स्वभाव के अनुकूल ही राजनीति देश में चल रही है, जिसे मैं झूठ और लूट की राजनीति कहता हूं. एक संकट तो इस झूठ और लूट की राजनीति की वजह से है. इस अर्थव्यवस्था और राजनीति का असर सांस्कृतिक परिदृश्य पर पड़ रहा है, जिससे साहित्य और संस्कृति में भी अपने अतीत के प्रति कोई सच्चा लगाव दिखाई नहीं देता है और यदि कोई लगाव दिखाई भी देता है तो बाजार की दृष्टि से उपयोगी होने पर ही सामने आता है. खास तौर पर लोकभाषाओं का जीवन खतरे में है.

भारत का मध्यवर्ग धीरे-धीरे विकसित हुआ मध्यवर्ग नहीं है, यह अचानक हनुमान कूद की तरह उछलकर ऊपर आया मध्यवर्ग है, इसलिए उसमें कोई संयम और सामाजिक चेतना नहीं है. चिंता की बात यह है कि भारत में संस्कृति का क्षेत्र अधिकांशतः मध्यवर्ग के दायरे में सीमित है और यह मध्यवर्ग ब्रिटिश राज के दिनों में जितना अवसरवादी था उतना ही आज भी अवसरवादी है.

हिंदी में मुक्तिबोध ने जीवन भर अपनी कविता और लेखों में सबसे अधिक आलोचना मध्यवर्ग के अवसरवाद की थी. अब वह आलोचना साहित्य से भी गायब हो गई है. हिंदुस्तान का मध्यवर्ग इस समय सेलीब्रेशन मतलब उत्सव मनाने की मानसिकता में है. इसलिए अवसरवाद को वह अवसरों की तलाश समझता है. इस सबके बावजूद इसी मध्यवर्ग में और उसके बाहर भी अब भी कुछ ऐसे लेखक व बुद्धिजीवी हैं, जिनमें सामाजिक चेतना है, मानवीय संवेदनशीलता है."

'विश्व शांति राष्ट्र' सन्देश आज पहले से कहीं अधिक प्रासंगिक

आज पूरी दुनिया एक ऐसे मोड़ पर खड़ी है जहाँ युद्ध सिर्फ़ किसी एक देश का मुद्दा नहीं, बल्कि मानव सभ्यता की सांसों पर लटका हुआ खतरा बन चुका है।

प्रमोद माधव आठले

शक्तिशाली राष्ट्रों की सैन्य स्पर्धा, परमाणु हथियारों का जमावड़ा, राजनीति का उग्र रूप और समाज में बढ़ती असहिष्णुता—सब मिलकर पृथ्वी को एक बार फिर वैश्विक टकराव की ओर धकेल रहे हैं। ऐसे भयावह समय में स्वाभाविक प्रश्न उठता है—क्या दुनिया केवल गोला-बारूद, प्रतिबंधों और सैन्य गठबंधनों से शांति पा सकेगी? स्पष्ट उत्तर है—नहीं।

यहीं पर महर्षि महेश योगी द्वारा स्थापित "विश्व शांति राष्ट्र" (Global Country of World Peace) की प्रासंगिकता आज पहले से कहीं अधिक उभरकर सामने आती है। महर्षि ने यह संस्थान उस समय बनाया था जब दुनिया शीत युद्ध, आतंकवाद और आर्थिक अस्थिरता की चपेट में थी। उनका मानना था कि शांति केवल राजनीतिक दस्तावेज़ या सैन्य समझौते से संभव नहीं—शांति चेतना की अवस्था है, और जब तक मानव चेतना में परिवर्तन नहीं होगा, युद्ध दोहराए जाते रहेंगे।

महर्षि ने कहा था—

"शांति बाहर नहीं, मन की गहराई में जन्म लेती है।" और इसी दर्शन पर आधारित था उनका विश्व शांति राष्ट्र—एक ऐसा अनोखा वैश्विक मॉडल जिसमें किसी भू-भाग का कब्ज़ा नहीं, कोई सेना नहीं, कोई हथियार नहीं, बल्कि ध्यान, चेतना और सामूहिक सकारात्मकता ही 'राष्ट्रीय शक्ति' थी।

यह विचार आज के दौर में लगभग भविष्यवाणी जैसा लगता है—क्योंकि युद्ध की जड़ें राजनीतिक नहीं, मनोवैज्ञानिक हो चुकी हैं। तनाव, भय, अहंकार, असुरक्षा—यही आधुनिक युद्धों के असली ईंधन हैं। महर्षि ने इन्हीं मूल कारणों को पहचानकर संसार को एक ऐसी तकनीक दी जो संघर्ष को जड़ से खत्म करने की क्षमता रखती है—ट्रान्सेंडेन्टल मेडिटेशन (TM) और सामूहिक ध्यान।

विश्व शांति राष्ट्र का केंद्रीय सिद्धांत था—

"जब समाज की सामूहिक चेतना सकारात्मक होती है, तो युद्ध असंभव हो जाता है।"

इस सिद्धांत को दुनिया भर में हुए कई प्रयोगों ने पुष्ट भी किया—जहाँ बड़े समूहों के TM साधकों ने अपराध दर, हिंसा, सामाजिक तनाव और युद्ध-उन्माद जैसे संकेतकों में उल्लेखनीय कमी लाई।

आज जब महाशक्तियाँ एक-दूसरे को चुनौती देने में लगी हैं, सैन्य गठबंधन टूट-फूट रहे हैं, और आतंरिक अस्थिरता बढ़ रही है, तब महर्षि की यह चेतावनी बेहद सटीक लगती है कि "हथियार अस्थायी रोकथाम दे सकते हैं, स्थायी समाधान नहीं।" उनके अनुसार वास्तविक शांति तभी संभव है जब मनुष्य के भीतर युद्ध समाप्त हो।

विश्व शांति राष्ट्र कोई काल्पनिक आदर्श नहीं, बल्कि एक सुसंगठित संस्थागत ढाँचा है जिसने शिक्षा, स्वास्थ्य, सामूहिक ध्यान, वेद विज्ञान और चेतना-आधारित शासन को एक नई शैली में संयोजित किया। यह एक ऐसा मॉडल है जहाँ राष्ट्र की सीमाएँ नहीं, बल्कि मानव चेतना की गुणवत्ता उसकी वास्तविक शक्ति होती है।

आज का विश्व जिस भयावह अस्थिरता से गुजर रहा है, उसमें महर्षि का यह संदेश किसी प्रकाश स्तंभ की तरह मार्ग दिखाता है-

"यदि मानवता को बचना है, तो पहले चेतना को बदलना होगा।"

युद्ध के मुहाने पर खड़ी पृथ्वी के लिए महर्षि महेश योगी का विश्व शांति राष्ट्र—वास्तव में—एक विकल्प नहीं, आवश्यकता है। ***(प्रमोद माधव आठले अंतराष्ट्रीय कारपोरेट गुरु है।)***

■■■

विश्व शांति के अग्रदूत - महर्षि महेश योगी

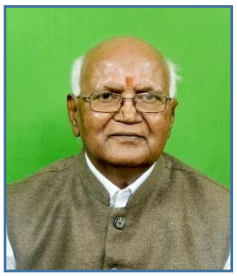

डॉ प्रमोद श्रीवास्तव

मानव चेतना के वैज्ञानिक, शांति के शिल्पी और आधुनिक योगी महर्षि महेश योगी—एक ऐसा नाम, जिसने दुनिया को यह सिखाया कि आध्यात्मिकता कोई रहस्य नहीं, बल्कि विज्ञान है; ध्यान कोई योगियों, साधुओं, तपस्वियों की धरोहर नहीं, बल्कि हर मनुष्य का जन्मसिद्ध अधिकार है।

बीसवीं शताब्दी के इस अद्भुत महाऋषि ने मानव चेतना को केवल समझा ही नहीं, बल्कि उसे वैज्ञानिक पद्धति से परखा, सिद्ध किया और विश्वभर में स्थापित किया। महर्षि ने यह मिथक तोड़ा कि आध्यात्मिक जीवन कठिन, जटिल या पहाड़ों-गुफाओं की सामग्री है। उन्होंने कहा—"सच्चा ध्यान वह है, जो सहज हो, सरल हो, और स्वाभाविक आनंददायक हो।" और इसी सरलता को उन्होंने "ट्रान्सेंडेन्टल मेडिटेशन" के रूप में दुनिया को दिया—एक ऐसा ध्यान, जिसने करोड़ों जीवन बदल दिए। महर्षि का सबसे शानदार दृष्टिकोण था कि मनुष्य के भीतर अनंत ऊर्जा है, लेकिन आधुनिक जीवन की भागदौड़, तनाव और विक्षोभ उसे दबा देते हैं। वे कहते थे, "मन उसी ओर भागता है जहाँ आनंद है," और TM इसी आनंद की यात्रा का द्वार है। आज जब दुनिया तनाव की महामारी से जूझ रही है, तब महर्षि का यह विचार और भी प्रासंगिक हो जाता है। उनके अनुसार तनाव केवल बीमारी नहीं, बल्कि "मानवीय क्षमता का हत्यारा" है—और TM ही है उसका वैज्ञानिक समाधान।

महर्षि की दृष्टि केवल व्यक्तिगत कल्याण तक सीमित नहीं थी। उनका सपना 'ग्लोबल पीस' का था। उन्होंने चेतना के सामूहिक वैज्ञानिक सिद्धांत प्रस्तुत किए—जहाँ बड़ी संख्या में लोग एक साथ ध्यान करें, तो सामूहिक चेतना में सकारात्मक तरंगें उत्पन्न होती हैं, जो समाज में हिंसा, अपराध और मानसिक अव्यवस्था को कम करती हैं। इस सिद्धांत का अनेक देशों में प्रयोग हुआ और कई जगह अपराध दर में वास्तविक गिरावट दर्ज की गई। यह महर्षि ही थे जिन्होंने कहा—

"शांति युद्ध से नहीं, शांति से पैदा होती है।"

महर्षि का एक और महत्वपूर्ण योगदान था—वेद और विज्ञान का सामंजस्य।

उन्होंने वेदों को केवल पूजा-पाठ का विषय नहीं रहने दिया, बल्कि आधुनिक वैज्ञानिक मानदंडों पर उनके सिद्धांतों को व्याख्यायित किया। उनके लिए वेद "चेतना का विज्ञान" थे, और योग—मानव विकास की उन्नत पद्धति। महर्षि ने पश्चिम को दिखाया कि भारत की आध्यात्मिक विरासत पुरातन नहीं, बल्कि एडवांस्ड साइंस है।

वेदांत की गूढ़ शिक्षाओं को उन्होंने अत्यंत सरल भाषा में दुनिया तक पहुँचाया।

महर्षि आधुनिक गुरुपरंपरा के स्तंभ थे। उन्होंने गुरु को अंधभक्ति का विषय नहीं, बल्कि ज्ञान का स्रोत बताया। यज्ञ, योग और वेद के माध्यम से उन्होंने पर्यावरणीय संतुलन से लेकर मानसिक स्वास्थ्य तक को एक ही धागे में पिरोया-

"प्राकृतिक नियमों का सामंजस्य।"

महर्षि महेश योगी केवल एक संत नहीं थे—वे चेतना के वैज्ञानिक, शांति के शिल्पी और मानवता के पुनर्स्रष्टा थे।

(प्रमोद श्रीवास्तव अंतराष्ट्रीय वैद्य हैं।)

■■■

संपूर्ण ज्ञान पहले से ही हमारे भीतर विद्यमान है ध्यान केवल उस पर पड़े आवरण को हटाता हैं।

महर्षि महेश योगी

नेताजी सुभाष संगठन के राष्ट्रीय न्याय सम्मेलन

अनीता बोस नेता जी की एक मात्र सुपुत्री नवंबर**1942** में जन्मी अनीता बोस आज लगभग **83** वर्ष की हैं जिन्होंने ऑग्सबर्ग यूनिवर्सिटी में अर्थशास्त्र की प्रवक्ता के रूप में शिक्षण कार्य प्रारम्भ किया और प्रोफेसर के पद से रिटायर हुई। उन्होंने अपने पिता की जीवनी पर आधारित एक पुस्तक नेताजी सुभाषचन्द्र बोस एण्ड जर्मनी अंग्रेजी में लिखी है।अपना शिक्षण कार्य पूर्ण करने के बाद अनिता का विवाह प्रोफेसर मार्टिन फाफ के साथ हुआ, जो बुण्डेस्टैग जर्मनी की संसद के सदस्य रहे उन दोनों के एक बेटा व दो बेटियाँ कुल तीन बच्चे हैं। बेटे का नाम पीटर अरुण, और बेटियों का नाम थॉमस कृष्णा व माया कैरीना है।वे अपने पति व् बच्चो के साथ जर्मनी में रहती हैं।

वर्ष **1934** में नेताजी सुभाष चंद्र बोस को अपने लंबे प्रवास के लिए अचानक वियना जाना पड़ा, जहां अपने मिशन के लिए उन्हें एक टाइपिस्ट की आवश्यकता थी।जून **1934** में ऑस्ट्रेलियाई महिला एमिली शैंकल को नेताजी ने अपना वैयक्तिक सचिव नियुक्त किया, बाद में सन **1942** में बाडगास्टिन नामक शहर में हिंदू रीति रिवाज से नेताजी का एमिली शैंकल से विवाह हुआ और दोनों के संसर्ग से पुत्री अनीता का जन्म हुआ ।पहली बार नेताजी ने अपने पुत्री को तब निहारा जब वह मात्र चार सप्ताह की थी, और तब नेताजी ने ही अपनी पुत्री का नाम अनीता रखा। जिसका अर्थ है—जिसे बाँधा न जा सके ,स्वतंत्र,यह शब्द संस्कृत मूल का है:"नी" (बाँधना/ले जाना) धातु में "अ" उपसर्ग जुड़ने से बना है, जिसका भाव है -न बांध पाने योग्य।।भारतीय सांस्कृतिक संदर्भ में अनीता नाम स्वतंत्रता, आत्मसम्मान और स्वाभिमान का प्रतीक माना जाता है।सांस्कृतिक संदर्भ में अनीता नाम स्वतंत्रता, आत्मसम्मान और स्वाभिमान का प्रतीक माना जाता है।

■■■

(नई दिल्ली)"भारत के संविधान क्लब" के 'स्पीकर हाल' में आहूत 'राष्ट्रीय न्याय सम्मेलन' में "भारतीय संविधान के अनुच्छेद- 21 एवं 25 के हवाले से विद्वत सभा के समक्ष नेता जी सुभाष संगठन के संस्थापक एवं राष्ट्रीय अध्यक्ष श्री अमित पांडेय द्वारा नेता जी की एक मात्र संतान डॉ श्रीमती अनीता बोस के मार्मिक अपील का समर्थन करते हुए यह प्रस्ताव रखा गया कि"रेंकोजी मंदिर (जापान) से अखंड भारत के प्रथम प्रधान नेता जी सुभास चंद्र बोस का "अस्थिकलश" भारत के पुण्य भूमि में लाकर उनकी सुपुत्री डॉ अनीता बोस के करकमलों द्वारा "पवित्र नदियों" में राजकीय सम्मान के साथ विसर्जित किया जाए। "उक्त प्रस्ताव पर खचाखच भरे स्पीकर हाल में उपस्थित विद्वत सभा द्वारा गहन चर्चा एवं मैराथन विमर्श के पश्चात् देश के कोने-कोने से आये तमाम बुद्धिजीवी वर्ग द्वारा तालियों की गड़गड़ाहट के साथ एक स्वर से "**जय हिन्द**" के उद्घोष के साथ ध्वनि मत से सर्वसम्मत प्रस्ताव पारित हुआ।

अवसर था 30 दिसंबर 1943 के "स्मरणोत्सव" का, जब नेता जी सुभाष बाबू ने अखंड भारत की भूमि शहीद एवं स्वराज द्वीप समूह (अंडमान निकोबार) पर पहली बार भारतीय राष्ट्रीय ध्वज तिरंगा लहराकर आजाद हिन्द फ़ौज द्वारा ब्रितानी हुकूमत को खुली चुनौती दी थी। यह हर भारतीय के लिए वह पवित्र एवं गौरव का दिन है जब नेता जी खुले आसमान के नीचे गरज रहे थे जय हिन्द का प्रचंड उद्घोष करते हुए कहा "हम आजाद हैं" और लहराती, इठलाती,उफनती, घहराती हुई समंदर की लहरें अंडमान निकोबार के किनारों से टकराकर मानों नेता जी के आवाज में आवाज मिला कर जयहिंद की प्रतिध्वनि से सलामी दे रही हो जिसकी हुंकार पूरे विश्व में गूंज गयी और एक स्वप्न द्रष्टा ने पूरे विश्व के सामने एक नया इतिहास ही नहीं बल्कि भूगोल की भी स्थापना कर दिया, जिसे विश्व के ग्यारह देशो ने तत्काल मान्यता भी प्रदान कर दी और उस समय अड़तीस करोड़ भारतवासी आज़ाद भारत के खुली हवा में सुकून की सांस ले रहे थे।

भारत के इस संविधान क्लब" का ऐतिहासिक स्पीकर हाल विभिन्न क्षेत्रों के मूर्धन्य विद्वानों से खचाखच

में पारित हुआ प्रस्ताव पिता के प्रतीक्षा में एक बेटी

भरा था , इस महति सभा में आहूत न्याय सम्मेलन का शुभारम्भ द्वीप प्रज्वलन से किया गया । वीडीओ कॉन्फ्रेंसिंग के जरिए जर्मनी में प्रवासरत नेता जी की एक मात्र संतान डॉ श्रीमती अनीता बोस के द्वारा अपने पिता आजादी के महानायक नेताजी सुभाष चंद्र बोस के अस्थिकलश को रेंकोजी मंदिर (जापान) से भारत लाने की मौजूदा केंद्र सरकार से मार्मिक अपील किया गया तथा नेताजी सुभाष चंद्र बोस के पौत्र श्री चंद्र कुमार बोस द्वारा मागों का प्रबल अनुमोदन किया गया एवं अध्यात्म

जगत से हनुमंत धाम लखनऊ, के पीठाधीश्वर महंत रामसेवक दास (गोमती बाबा) द्वारा नेताजी के संस्मरण सुनाए गए तथा श्री सुमेरु राय चौधरी द्वारा नेताजी के अस्थि कलश के बारे में व्यापक अनुसंधान का शोध प्रपत्र प्रस्तुत किया गया।

नेता जी के दिव्य ज्योति स्वरूप इस अद्भुत दैवीय मंच पर आसीन विशिष्ट अतिथि गण ने अपने ओजस्वी विचार रखते हुए अपना समर्थन व्यक्त किया, इस न्याय सम्मेलन की अध्यक्षता पू. मंत्री श्री सुनील शास्त्री (पूर्व प्रधानमंत्री स्व. श्री लाल बहादुर शास्त्री जी के पुत्र) ने किया। पूर्व सांसद श्रीमती रीता बहुगुणा जोशी(उ. प्र. के पूर्व मुख्यमंत्री स्व. हेमवती नंदन बहुगुणा जी की पुत्री)- प्रखर राजनेता एवं विचारक श्री के. सी. त्यागी(पू. सांसद ,राज्यसभा एवं लोकसभा)-राजनेता श्री सुपर्णो सतपथी (ओडिशा की पूर्व मुख्यमंत्री स्वर्गीय श्रीमती नंदिनी सतपथी जी के पौत्र)श्री कपिल खन्ना (अध्यक्ष, विश्व हिंदू परिषद, दिल्ली)-श्री रोहित पांडेय (पू. सचिव, माननीय सर्वोच्च न्यायालय बार एसोसिएशन) - सुश्री पायल सिंह (अध्यक्ष, ट्रांसजेंडर समुदाय, एसपीए) इसके अतिरिक्त मीडिया जगत-से प्रो प्रदीप माथुर(मीडिया गुरु) ग्रुप चेयरमैन,मीडिया मैप पब्लिकेशन)-अल्पसंख्यक समाज से श्री अतीकुर्रहमान साहब, (अधिवक्ता सर्वोच्च न्यायालय एवं राष्ट्रीय अध्यक्ष नेशनल माइनॉरिटी लीगल काउंसिल),उद्योग जगत के सलाहकार श्री राजन छिब्बर, किसान जगत से श्री राजेंद्र सिंह यादव (राष्ट्रीय अध्यक्ष भारतीय किसान संगठन), चिकित्सा जगत से सुश्री मिथिलेश पांडेय- पं. राम प्रकाश शर्मा (सुपुत्र आजाद हिंद फौजी शहीद उधो राम शर्मा) न्यायपीठ से पूर्व न्यायाधीश गण, गुरुत्तम सेवा समित के प्रमुख शिवाजी एवं माननीय सर्वोच्च न्यायालय से बड़ी संख्या में उपस्थित अधिवक्तागण श्री प्रभात पचौरी, अरविन्द कुमार श्रीवास्तव,मोहमद शहीद खान, एम् ए मंसूरी, श्री आदेश त्यागी, श्री सत्य प्रकाश त्रिपाठी,श्री नन्द प्रकाश नवमान, श्री खूबचंद्र, श्री शैलेन्द्र त्रिपाठी, डॉ एम् ए गजाली, एम् बी के एम् फाउंडेशन के महानिदेशक श्री राजीव माथुर, सामाजिक चिंतक एवं लेखक श्रीमती हुज़ैफ़ा अबरार, श्रीमती नीरजा पाल, दीपक दुबे आदि ने प्रस्ताव का प्रबल समर्थन किया। श्री चंद्र कुमार द्वारा आए हुए समस्त गणमान्य अतिथियों का स्वागत किया गया एवं कार्यक्रम का सफल संचालन मानस मर्मज्ञ एवं "श्री राम चरित मानस अनुसन्धान केंद्र" प्रतिष्ठानपुरी (प्रयागराज) के संस्थापक एवं अध्यात्म प्रमुख डॉ शरदेंदु प्रकाश द्वारा किया गया, कु.शालिनी पांडे द्वारा नेताजी सुभाष संगठन के विगत तीन दशकों के क्रांतिकारी इतिहास का सिंहावलोकन प्रस्तुत किया गया। अवधपुरी से पधारे रघुनंदन विला प्रमुख श्री प्रदीप यादव ने कार्यक्रम की सफलता पर मिष्ठान वितरण कर बधाई दिया।

कार्यकारी संपादक जगदीश गौतम

स्वतंत्रता के बाद: भारतीय मीडिया का बदलता स्वरूप

प्रो. प्रदीप माथुर

आज मीडिया हमारे जीवन का अभिन्न हिस्सा बन चुका है। हम मीडिया की अभिव्यक्ति को अपने विचारों और मान्यताओं की दृष्टि से देखते हैं, इसलिए मीडिया को तटस्थ दृष्टि से देखने–समझने के प्रयास कम होते जा रहे अपने प्रसार, विज्ञापन और व्यावसायिक हितों को सुनिश्चित करने के लिए आज मीडिया वही लिखता–कहता है जो पाठक–श्रोता समूह को पसंद आता है। कोई भी संपादक या पत्रकार उन्हीं बातों को कहने से कतराता है जो जनता में लोकप्रिय न हों।

स्वतंत्रता के बाद के वर्षों के मीडिया और आज के मीडिया के बीच दो सबसे बड़े अंतर देखे जा सकते हैं। जनसंचार की परंपरागत विज्ञान-व्यवस्था मीडिया का आधार रही है। पारंपरिक रूप से जनसंचार के चार कार्य माने गए हैं - सूचना देना, मनोरंजन करना, समाज को शिक्षित करना और वैज्ञानिक सोच के साथ एक प्रबुद्ध समाज का निर्माण करना। स्वतंत्रता के बाद ढाई दशक तक मीडिया ने इन कार्यों को ईमानदारी से निभाया।

लेकिन जैसे-जैसे राजनीतिक टकराव बढ़ा, मीडिया के चरित्र में गुणात्मक बदलाव आने लगा, जिसका परिणाम आज "गोदी मीडिया" और "राष्ट्रवादी मीडिया" के रूप में दिखाई देता है।

स्वतंत्र भारत का संविधान बनने के बाद देश में पहला आम चुनाव हुआ, जिसमें कांग्रेस को भारी बहुमत मिला। पहले प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू सहित कई संवेदनशील और गंभीर व्यक्तियों को चिंता थी कि विपक्ष की कमज़ोर स्थिति में लोकतंत्र का यह प्रयोग कहीं असफल न हो जाए। यह चिंता इसलिए भी उचित थी कि द्वितीय विश्व युद्ध के बाद उपनिवेशवाद के अंत के साथ एशिया और अफ्रीका के कई देशों में लोकतांत्रिक सरकारें गिर रही थीं और तानाशाहियाँ उभर रही थीं।

इस परिस्थिति का समाधान प्रसिद्ध पत्रकार और संपादक फ्रैंक मॉरिस ने सुझाया। उन्होंने कहा कि ऐसे समय में समाचार जगत को विपक्ष की भूमिका निभानी चाहिए। अख़बारों को संसद विपक्ष के समान सरकार की कार्यप्रणाली का मूल्याधारित आकलन और आलोचना करनी चाहिए—सिर्फ़ प्रशंसा नहीं करनी चाहिए। फ्रैंक मॉरिस की इस सोच के आधार पर देश के प्रमुख अंग्रेज़ी अखबारों और पत्रिकाओं ने प्रशासन की निष्पक्ष आलोचना की और नीतिनिर्माण की प्रक्रिया में सरकारों को सुझाव भी देते रहे।

यह सत्य है कि किसी को आलोचना पसंद नहीं होती। इसीलिए नेताओं और प्रेस के बीच कई बार तनाव रहा। लेकिन लोकतांत्रिक प्रणाली और प्रेस की स्वतंत्रता का सम्मान करते हुए किसी भी दल के नेता ने कभी प्रेस की आज़ादी को सीमित नहीं किया और न ही पत्रकारों को प्रताड़ित किया। 1975–77 के आपातकाल में प्रेस पर सेंसरशिप तो लगी, लेकिन पत्रकारों को सताया नहीं गया। आज बिना सेंसरशिप के ही पत्रकारों को प्रताड़ित किया जा रहा है, जिससे उनके मन में असुरक्षा और भय का वातावरण बन गया है।

स्वतंत्रता के लगभग चार दशक बाद वैश्वीकरण और आर्थिक उदारीकरण की शुरुआत के साथ देश की राजनीति ही नहीं, मीडिया का चरित्र भी बदल गया। राजनीति और प्रशासन से जुड़े मुद्दों की जगह आर्थिक दुनिया और भू-राजनीतिक विषयों ने अख़बारों के पन्नों पर अधिक स्थान पाना शुरू किया। मुद्रास्फीति, शेयर बाज़ार, पूँजी निवेश जैसे तकनीकी मुद्दे आम चर्चा का हिस्सा बन गए, लेकिन आम नागरिक की राजनीतिक शिक्षा और उससे उत्पन्न सामाजिक दृष्टि पीछे छूट गई। पूँजीवादी शोषण, वर्ग संघर्ष और श्रमिक आंदोलनों जैसे विषय मीडिया से गायब होने लगे। उदारवादी अर्थव्यवस्था के

दौर में समाजवाद, सामाजिक न्याय, आर्थिक समानता और वितरित विकास जैसे शब्द धीरे-धीरे बेमानी होते गए। ऊपर से सरकारी नियंत्रण का विरोध करने वाली उदारवादी राय यह समझ नहीं पाई कि पश्चिमी पूँजीवाद और भारतीय पूँजीवाद के चरित्र में बुनियादी अंतर है। पश्चिम में पूँजीवाद सामंती व्यवस्था के विरोध में उभरा था, जबकि भारत में पूँजीवाद सामंतवाद का ही आर्थिक विस्तार है।

नेहरूवादी अर्थव्यवस्था का विरोध करते हुए उदारवादी नेताओं ने अनजाने में दक्षिणपंथी राजनीति और शोषणकारी पूँजीवादी ढाँचे को बढ़ावा दिया। इसका सीधा असर मीडिया पर पड़ा, जो धीरे-धीरे जनता के आंदोलनों से कटता गया और समाज के वंचित–कमज़ोर वर्गों के प्रति असंवेदनशील होता गया। इस प्रकार आम आदमी से दूरी बनाते हुए मीडिया की प्रतिबद्धता भी कम होती चली गई।

आज अधिकांश भारतीय मीडिया स्वार्थी वर्गों के हाथों की कठपुतली बन गया है। वह सम्पन्न वर्गों का प्रवक्ता तो बन ही चुका है, साथ ही जातिवादी, क्षेत्रीय और साम्प्रदायिक महत्वाकांक्षाओं का भी प्रतिबिंब बन गया है। स्वतंत्रता के बाद की वह मीडिया, जो दलगत राजनीति से

आनंद तो लेना चाहते थे लेकिन देश के वंचित वर्गों के विकास की मानसिक जिम्मेदारी नहीं उठाना चाहते थे। उनके प्रभाव में पत्रकारिता या तो वैचारिक राजनीति से दूर हटने लगी या गंभीर राजनीतिक विश्लेषण का मज़ाक बनाने लगी। वरिष्ठ संपादक डी.आर. मणकेकर ने पत्रकारों की इसी अज्ञानता पर कहा था "एक साधारण पत्रकार का अज्ञान इतना बड़ा है कि उससे पूरा कमरा भरा जा सकता है।" दाएँ-बाएँ (Right–Left) जैसे सामान्य राजनीतिक शब्द भी पत्रकारों के लिए अपरिचित हो गए।

आज, स्वतंत्रता के 79 वर्ष बाद भी भारतीय पत्रकारिता एक चौराहे पर खड़ी है। एक ओर शक्तिशाली और संसाधन-संपन्न हित समूह पत्रकारिता को अपनी मुट्ठी में कस रहे हैं, वहीं दूसरी ओर डिजिटल तकनीक और सोशल मीडिया अभिव्यक्ति की ऐसी स्वतंत्रता दे रहे हैं, जो पहले कभी संभव नहीं थी। इस तकनीक के कारण और किसी भी राजनीतिक गतिविधियों का ईमानदार मूल्यांकन करती थी, अब राजनीतिक हितों की जनसंपर्क मशीनरी बन चुकी है।

उपभोक्तावादी आर्थिक संस्कृति में उपभोक्ता ही सब कुछ बन गया है। कहा जाता है कि उपभोक्ता राजा है, अतः सब कुछ उसकी पसंद के अनुसार होना चाहिए। क्योंकि मीडिया का प्रमुख उपभोक्ता शहरी शिक्षित मध्यम वर्ग है, इसलिए उदारीकरण के दौर में मीडिया का फोकस आम जनता से हटकर मध्यम वर्ग पर केंद्रित हो गया। इससे मीडिया न केवल असंवेदनशील हुआ, बल्कि हर आर्थिक रूप से सफल व्यक्ति और संगठन का महिमामंडन करने लगा। "पर्यावरण प्रबंधन" के नाम पर भ्रष्टाचार को भी स्वीकार्यता मिलने लगी और अंबानी-अडानी जैसे लोग समाचार जगत में वह स्थान पाने लगे जो देश में औद्योगिक क्रांति लाने वाले टाटा और बिड़ला जैसे उद्योगपतियों को भी नहीं मिला।

खुशवंत सिंह—जिनके पूर्वज सुजान सिंह ब्रिटिश सत्ता के समर्थक थे और जिन्होंने भगत सिंह के खिलाफ़ झूठी गवाही दी थी—उच्च मध्यम वर्ग के ऐसे पाठकों के पसंदीदा लेखक बन गए, जो नई आर्थिक समृद्धि का

सी भी तानाशाही व्यवस्था के लिए मीडिया पर पूर्ण नियंत्रण स्थापित करना असंभव हो जाएगा।

अब मूल प्रश्न यह है कि—क्या युवा पत्रकार, लोकतंत्र और समतामूलक समाज के प्रति विश्वास रखते हुए, इस तकनीक का उपयोग समाज के वंचित तबकों के हित में करेंगे? क्या वे पत्रकारिता को उन उच्च मूल्यों की ओर वापस ले जाएंगे जिनके लिए स्वतंत्रता संग्राम की पत्रकारिता जानी जाती थी? यदि भारतीय मीडिया/पत्रकारिता को अपनी प्रतिष्ठा और भरोसा बनाए रखना है, तो उसे व्यापारिक और दलगत राजनीति के स्वार्थों की कैद से मुक्त होना होगा और आम लोगों की आशाओं–आकांक्षाओं से जुड़ना होगा।

भविष्य की पत्रकारिता का स्वरूप क्या होगा—इस प्रश्न का उत्तर अभी भविष्य के गर्भ में है।

■■■

"मीडियामैप परिवार अपने सभी पाठकों को नववर्ष की हार्दिक शुभकामनाएँ देता है और आशा करता है कि यह वर्ष विवेकपूर्ण सोच, जिम्मेदार पत्रकारिता और सामाजिक समरसता की दिशा में ठोस एवं सकारात्मक बदलावों का साक्षी बने।"

मीडिया: विश्वसनीयता के संकट की चुनौती

डॉ.अनुभव

भारत में समाचार मीडिया एक गंभीर विश्वसनीयता संकट का सामना कर रहा है। वह समय अब बीत चुका है जब हमारा समाचार मीडिया अपनी निष्पक्षता, वस्तुनिष्ठता और गैर-दलीय दृष्टिकोण के लिए जाना जाता था, और उसका कंटेंट दर्शकों द्वारा पूर्ण सत्य माना जाता था। आज मीडिया सामग्री, खासकर टीवी की, संदेह और अविश्वास की दृष्टि से देखी जाती है और पत्रकारों पर खुलेआम बेईमानी के आरोप लगाए जाते हैं। स्वाभाविक है कि यह उन सभी लोगों के लिए चिंता का विषय है जो मीडिया के भविष्य को लेकर सजग हैं।

मीडिया की वर्तमान स्थिति को समझने के लिए हमें समस्या की जड़ तक जाना होगा। भारत में जनसंचार माध्यमों का विकास 19वीं सदी की शुरुआत में ब्रिटिश शासन से स्वतंत्रता के संघर्ष के साथ शुरू हुआ। महात्मा गांधी के राष्ट्रीय आंदोलन में प्रवेश ने स्वतंत्रता संघर्ष को नई गति दी और इसे जनांदोलन में बदल दिया। इस आंदोलन को जनमाध्यमों की आवश्यकता थी और इसी प्रक्रिया में राष्ट्रवादी प्रेस का उदय और विस्तार हुआ। बॉम्बे का फ्री प्रेस जर्नल, लाहौर का ट्रिब्यून, नागपुर का हितवाद, कलकत्ता का अमृत बाजार पत्रिका, लखनऊ का नेशनल हेराल्ड तथा विभिन्न भारतीय भाषाओं के अनेक समाचार पत्र इसी दौर में अस्तित्व में आए।

लेकिन स्वतंत्रता के बाद राष्ट्रवादी प्रेस अपनी दिशा खो बैठा। देश के विभाजन और सांप्रदायिक दंगों ने इसे दिशाहीन कर दिया। यह वही दिशा-भ्रम है जिसने आज मीडिया से जुड़े अधिकतर समस्याओं को जन्म दिया है। स्वतंत्रता के बाद धीरे-धीरे मीडिया का आम आदमी के प्रति वैचारिक समर्पण कमजोर पड़ता गया और एक मिशन के बजाय इसे एक व्यवसाय के रूप में देखा जाने लगा।

हालांकि राष्ट्रवादी प्रेस में राष्ट्रभक्ति और लोकसेवा का भाव प्रबल था, परंतु यह आवश्यक नहीं कि वह उच्च स्तर की प्रोफेशनलिज़्म का भी परिचायक हो। वस्तुतः सही मायने में पेशेवर पत्रकारिता का प्रभाव राष्ट्रवादी अखबारों के सीमित हिस्सों तक ही था, और भाषा-प्रेस में यह स्थिति और भी कमजोर थी। इसी कारण मिशन से पेशे की ओर संक्रमण के दौरान भारतीय मीडिया पहले पीआर, विज्ञापन और संचार विशेषज्ञों के प्रबंधन उपकरण में बदला और फिर बड़े व्यवसाय व राजनीतिक शक्तियों के निहित स्वार्थों का माध्यम बन गया। इस यात्रा में आदर्शवाद और जन-प्रतिबद्धता की भावना कहीं खो गई।

टीवी और डिजिटल मीडिया के आगमन ने इस प्रवृत्ति को और मजबूत किया। टीवी भारत में आज़ादी के दो दशक बाद आया। प्रारंभिक दौर में यह व्यापक जन-जागरूकता का वादा पूरा करता दिखाई दिया लेकिन जल्द ही यह मनोरंजन-प्रधान कार्यक्रमों में बदल गया। प्रसार और दर्शकों की संख्या के मामले में टीवी ने भारी विकास किया है। आज भारत में लगभग 900 टीवी चैनल हैं जिनका कुल दर्शक वर्ग लगभग 76 करोड़ के आसपास माना जाता है।

आज टीवी मीडिया की व्यापक आलोचना चिंताजनक है। निस्संदेह, इसने खबरों को सतही, सनसनीखेज और हल्का बना दिया है। इससे भी बुरी बात यह है कि उस पर फेक न्यूज़ को बढ़ावा देने तथा 'गोदी मीडिया' बनने जैसे आरोप लग रहे हैं। इन सबने भारतीय मीडिया की विश्वसनीयता को गहरा नुकसान पहुँचाया है।

टीवी पत्रकारिता के बुनियादी मानकों में कोई भी गिरावट गंभीर चिंता का विषय है। इसलिए स्थिति के निष्पक्ष और विश्लेषणात्मक आकलन की आवश्यकता है।

निजी टीवी चैनल चलाना अत्यधिक खर्चीला काम है। तीव्र प्रतिस्पर्धी विज्ञापन बाजार में संसाधन जुटाना कठिन है, इसलिए निजी चैनलों की असफलता दर बहुत अधिक है। अधिक दर्शक संख्या, जिसे टीआरपी

से मापा जाता है, चैनल की विज्ञापन बाजार में स्थिति मजबूत करती है।

चूँकि दर्शक ही जनसंचार माध्यमों का प्राण हैं, टीवी चैनलों को विविध साक्षरता-स्तरों वाले दर्शकों की रुचियों को ध्यान में रखना होता है। अधिकांश चैनल अपने दर्शकों की समझ और ज्ञान के बारे में अनुचित अनुमान लगाते हैं। कार्यक्रमों में "पाताल की सीढ़ी" या "सीता माता की रसोई की खोज" जैसे हल्के विषयों का सहारा लिया जाता है, और समाचार प्रस्तुति में राजनीति और व्यापार के निहित स्वार्थों के अनुरूप पक्षपात दिखता है। यह दृष्टिकोण दर्शकों को कमतर समझता है और मानता है कि उन्हें प्रभावित करने के लिए सामग्री को हल्का या 'डम्ब-डाउन' करना आवश्यक है।

उत्तम कंटेंट निर्माण के लिए समाज की संरचना और गतिशीलता की समझ, सही दृष्टिकोण, ज़मीनी हकीकत से जुड़ाव और सकारात्मक नजरिया आवश्यक है। इसके लिए उच्च गुणवत्ता वाली मीडिया शिक्षा, जनसंचार का समुचित प्रशिक्षण और त्वरित टीआरपी के लिए सतही कंटेंट बनाने की प्रवृत्ति का विरोध जरूरी है। यह सब मेहनत मांगता है और इसी से हम बेहतरीन कंटेंट निर्माता बन सकते हैं।

दर्शक की आदतों, व्यवहार और दृष्टिकोण का गहराई

से अध्ययन आज की सबसे बड़ी आवश्यकता है। हमें दर्शकों की मनोवृत्ति समझनी होगी। तभी हम स्वास्थ्य, शिक्षा, रोजगार और सहभागी विकास जैसे असल मुद्दों को दर्शकों के लिए रोचक बना पाएंगे।

इसलिए टीवी कंटेंट निर्माण वास्तविक दर्शक-आवश्यकताओं और उनकी रुचि पर आधारित होना चाहिए—न कि उस पर जो हम मान लेते हैं कि उन्हें चाहिए। संक्षेप में, कंटेंट निर्माण के प्रति हमारी सोच में एक नए प्रतिमान (paradigm) की जरूरत है। इसी से हम मीडिया जैसी संस्था की गरिमा, प्रतिष्ठा और विश्वसनीयता को पुनः स्थापित कर पाएंगे।

■■■

पत्रकारिता की परंपरा बिखरने दी गई

के. बी. माथुर

भारतीय मीडिया की विश्वसनीयता का लगभग टूट जाना अब बहस का विषय नहीं रहा, बल्कि एक कड़वी सच्चाई है जिसे पेशेवर हलकों के साथ-साथ आम नागरिक भी महसूस कर रहे हैं। यह गिरावट अचानक नहीं आई; यह उन संरचनात्मक विकृतियों का परिणाम है जिनकी शुरुआत तीन दशक पहले हो चुकी थी। यह संकट केवल संपादकीय या राजनीतिक नहीं, बल्कि संस्थागत, आर्थिक और नैतिक भी है।

अक्सर माना जाता है कि पत्रकारिता मूल्यों का ह्रास हाल के वर्षों में शुरू हुआ, पर इसके बीज 1990 के दशक में ही पड़ गए थे, जब बड़े मीडिया समूहों ने पत्रकारों को अल्पकालिक संविदाओं पर रखना शुरू किया। इससे स्वतंत्र पत्रकारिता के लिए आवश्यक सुरक्षा और स्वायत्तता कमजोर पड़ गई। टाइम्स ऑफ इंडिया के परिवर्तन—जब समीर और विनीत जैन ने विज्ञापन-केंद्रित सामग्री पर जोर दिया—ने एक निर्णायक मोड़ दिया। उस समय के प्रधान संपादक गिरिलाल जैन ने इस वृत्ति का विरोध किया तो उन्हें हटाया गया। उनके बाद आए दिलीप पड़गांवकर भी

अंततः बाहर कर दिए गए। संदेश साफ था-संपादकीय स्वतंत्रता अब व्यावसायिक हितों के आगे गौण है।

समय के साथ-साथ संपादक की भूमिका—जो कभी अखबार का नैतिक केंद्र हुआ करती थी—लगभग समाप्त कर दी गई। आज कई प्रतिष्ठित अखबार अपनी पाठक-संख्या बनाए रखने के लिए बड़ी मात्रा में प्रतियां मुफ्त बाँटने को मजबूर हैं, ताकि विज्ञापन संख्या बनी रहे।

टेलीविज़न, जिससे उम्मीद थी कि वह संतुलन बनाएगा, वह भी जनता का भरोसा नहीं बचा सका। सुप्रीम कोर्ट ने बार-बार याद दिलाया कि एयरवेव्स एक सार्वजनिक संपत्ति हैं, परन्तु चैनल सत्यापित खबरों से अधिक टकराव, शोर और तमाशे को प्राथमिकता देने लगे हैं। दर्शक कुछ ही मिनटों में ऊबकर चैनल बदल देते हैं। इसका परिणाम बेहद हानिकारक हुआ है—सार्वजनिक विमर्श विकृत हुआ, गलत सूचना अनियंत्रित ढंग से फैलने लगी, और नागरिकों के सामने पक्षपाती आख्यानों का धुंधलका छा गया।

भारत दुनिया के सबसे बड़े लोकतंत्रों में से एक है, लेकिन वैश्विक स्तर पर उसकी मीडिया की विश्वसनीयता नगण्य है। भारतीय पत्रकारिता को न सामग्री के स्तर पर सम्मान मिलता है, न निष्पक्षता के लिए। इसका कारण स्पष्ट है—समाचार कक्षों में त्वरित क्लिक-संस्कृति ने जगह ले ली, तथ्यों पर राय हावी हो गई, और पत्रकारिता राजनीतिक विस्तारक का उपकरण बनकर रह गई।

यह पतन उस मजबूत परंपरा के एकदम विपरीत है जो स्वतंत्रता के बाद के दशकों में विकसित हुई थी। स्वतंत्रता भारत जैसे संस्थान—जिसके पहले संपादक अशोकजी थे, एक ICS टॉपर जिन्होंने गांधीवादी विचारों से प्रभावित होकर प्रशासनिक सेवा छोड़ पत्रकारिता चुनी—और बाद में योगेन्द्रपति त्रिपाठी—इस सिद्धांत पर चलते थे कि अखबार एक सार्वजनिक संस्था है, निजी व्यापार नहीं।

पंडित त्रिपाठी के नेतृत्व में यह पत्र सत्य, जिम्मेदारी और शुचिता के लिए जाना जाता था। 1960 के दशक के अंत में उनके निधन पर पूरा लखनऊ उमड़ पड़ा था। उनकी पत्रकारिता ने पीढ़ियों को दिशा दी।

इसी तरह अमृत बाजार पत्रिका समूह का विस्तार और अमृत प्रभात जैसे नए संस्करणों का उदय 1970-80 के दशक में क्षेत्रीय पत्रकारिता की विश्वसनीयता का प्रतीक था। उस दौर में प्रसार बढ़ रहा था, पत्रकार आर्थिक रूप से सुरक्षित थे, और संपादकीय नेतृत्व का सम्मान कायम था।

लेकिन इन परंपराओं का धीरे-धीरे क्षरण होने लगा। दूरदर्शी स्वामियों जैसे तुषारकांति घोष के निधन के बाद उत्तराधिकारी संस्थागत मूल्यों को बचाए नहीं रख सके। बाज़ार-चालित निर्णयों ने संपादकीय विवेक का स्थान ले लिया।

आज की मीडिया स्थिति का विश्लेषण राजनीतिक संदर्भों के बिना अधूरा है। मौजूदा सरकार, बड़े जनादेश के बावजूद, प्रेस से संवाद में रुचि नहीं दिखाती। प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने दस वर्षों से अधिक कार्यकाल में एक भी खुली प्रेस वार्ता नहीं की—जो लोकतांत्रिक व्यवहार से बिल्कुल भिन्न है।

परंतु इस संकट के लिए केवल राजनीति जिम्मेदार नहीं। टाइम्स ग्रुप, द हिंदू, हिंदुस्तान टाइम्स और बड़े हिंदी अखबारों सहित प्रमुख मीडिया संस्थान भी उतने ही जिम्मेदार हैं जिन्होंने संविदा-प्रथा लागू कर पत्रकारों की नौकरी-सुरक्षा समाप्त कर दी। कुछ जगहों पर नियुक्ति के समय ही त्यागपत्र पर हस्ताक्षर कराए जाने की खबरें मिलती हैं—जिसकी तत्काल जांच होनी चाहिए।

वर्किंग जर्नलिस्ट्स एक्ट के कमजोर पड़ने और नए श्रम संहिताओं ने भी पत्रकारों के संरक्षण को और घटा दिया है, जिससे आशंका बढ़ी है कि मीडिया एक अनुकूल व्यवस्था में बदल रहा है, न कि स्वतंत्र निगरानी मंच में।

पत्रकारिता के पतन का असर अंतरराष्ट्रीय घटनाओं की रिपोर्टिंग में भी दिखता है। हाल ही में ब्रैम्पटन (कनाडा) के एक मंदिर में हुई घटना—जहाँ खालिस्तानी तत्वों ने भारतीय उच्चायोग के अधिकारियों पर हमला किया—को कई भारतीय मीडिया संस्थानों ने "मंदिर पर हमला" बताकर communal तनाव को बढ़ावा दिया, जबकि कोई प्रतिमा या धार्मिक संरचना क्षतिग्रस्त नहीं हुई थी।

फिर भी, उम्मीद खत्म नहीं हुई है। कई युवा और वरिष्ठ पत्रकार आज भीमूल्यों पर कायम हैं। अनुभवी संपादकों द्वारा नए स्वतंत्र प्रकाशनों की शुरुआत इस बात का संकेत है कि सच्चाई और निष्पक्षता की लौ अभी बुझी नहीं है।

पुनर्निर्माण का रास्ता वही है—संपादकीय स्वायत्तता की पुनर्स्थापना, पत्रकारों के संस्थागत संरक्षण की गारंटी, सनसनी से दूरी, और यह दृढ़ निश्चय कि मीडिया सत्ता का सजावटी दर्पण नहीं, बल्कि उसकी कठोर जांच का साधन है। लोकतंत्र तब नहीं गिरता जब सरकारें चूक करती हैं; वह तब विचलित होता है जब प्रेस कठिन प्रश्न पूछना बंद कर देती है।

आज भारतीय मीडिया एक निर्णायक मोड़ पर खड़ी है। वह अपनी विश्वसनीयता वापस पा सकेगी या नहीं—यह न केवल पत्रकारिता, बल्कि भारतीय लोकतंत्र के भविष्य को भी तय करेगा।

■■■

उर्दू पत्रकारिता: अतीत, वर्तमान और भविष्य

डॉ. मुजफ्फर गजाली

देश में आज भी कई लोग ऐसे मिल जायेंगे जिन की प्रारंभिक शिक्षा मदरसा में हुई है। पाठशाला या स्कूल को उर्दू में मदरसा कहते हैं। मदरसा में शब्दों के उच्चारण, भाषा के ज्ञान और तर्बियत यानि अच्छा इंसान बनाने पर बहुत ज़ोर दिया जाता था। सीखने और ज्ञान बढ़ाने के लिए उर्दू अख़बारों को पढ़ने की सलाह दी जाती थी। उर्दू समाचार पत्रों ने यह कार्य निपुणता के साथ अंजाम दिया। उर्दू पत्रकारिता आगे बढ़ कर भारतीय उपमहाद्वीप की सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक चेतना की एक सशक्त अभिव्यक्ति का स्रोत्र बानी। यह केवल समाचारों के संप्रेषण का माध्यम नहीं, बल्कि विचारों एवं जनमत के निर्माण और सामाजिक सुधार की एक प्रभावी धारा रही है। उर्दू पत्रकारिता का इतिहास संघर्ष, प्रतिबद्धता और परिवर्तन से भरा हुआ है। इसके अतीत में क्रांतिकारी तेवर हैं, वर्तमान में चुनौतियाँ हैं और भविष्य में संभावनाएँ।

उर्दू पत्रकारिता की नींव अठारहवीं सदी के अंत और उन्नीसवीं सदी की शुरुआत में पड़ी। 1822 में कोलकाता से प्रकाशित जाम-ए-जहाँनुमा को उर्दू का पहला समाचार पत्र माना जाता है। इसके बाद देहली उर्दू अख़बार (1837), जिसे मौलवी मोहम्मद बाक़र ने संपादित किया, उर्दू पत्रकारिता के इतिहास में मील का पत्थर साबित हुआ। मौलवी बाक़र न केवल पहले शहीद पत्रकार माने जाते हैं, बल्कि उन्होंने पत्रकारिता को जनसरोकारों से जोड़ा।

1857 की आज़ादी की पहली जंग में उर्दू पत्रकारिता का अविस्मरणीय योगदान है।अंग्रेज़ी हुकूमत के खिलाफ जनभावनाओं को स्वर देने में उर्दू अख़बारों ने साहसिक भूमिका निभाई। उर्दू गाइड, रहबरे हिन्द, अख़बार ऐ आलम, कोहेनूर, अवध अख़बार, पैसा अख़बार, ज़मींदार अख़बार, आज़ाद अख़बार, आगरा अख़बार, अल-हिलाल, अल-बलाग़ (मौलाना अबुल कलाम आज़ाद) कॉमरेड, हमदर्द (मौलाना मोहम्मद अली जौहर) मदीना बिजनौर, उर्दू ऐ मुअल्ला (मौलाना हसरत मोहानी) बन्दे मातरम, रोज़नामा पंजाब और नवाए वक़्त जैसे समाचार पत्रों ने न केवल राजनीतिक चेतना जगाई, बल्कि धार्मिक और सामाजिक सुधार आंदोलनों को भी बल दिया। मौलाना आज़ाद, मौलाना मुहम्मद अली जोहर, हसरत मोहानी, मुंशी दया नारायण निगम और उस दौर के दूसरे अख़बारों ने उर्दू पत्रकारिता में वैचारिक और भाषायी स्तर पर क्रांति पैदा की। इनकी भाषा ओजस्वी, तर्कपूर्ण और प्रभावशाली थी। इसी दौर में उर्दू पत्रकारिता ने साहित्य, राजनीति और समाज—तीनों को एक साथ साधा। पत्रकार साहित्यकार भी थे और साहित्यकार पत्रकार भी।

स्वतंत्रता आंदोलन और उर्दू पत्रकारिता

बीसवीं सदी के प्रारंभिक दशकों में उर्दू पत्रकारिता स्वतंत्रता आंदोलन की अग्रिम पंक्ति में खड़ी दिखाई देती है। खिलाफ़त आंदोलन, असहयोग आंदोलन और भारत छोड़ो आंदोलन के दौरान उर्दू अख़बारों ने जनता को संगठित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। अंग्रेज़ी शासन की कठोर सेंसरशिप के बावजूद उर्दू पत्रकारों ने कलम नहीं छोड़ा। इस दौर की पत्रकारिता का मूल उद्देश्य केवल सूचना देना नहीं, बल्कि जनता को जागरूक करना, अन्याय के खिलाफ खड़ा करना और

राष्ट्रीय एकता को मज़बूत करना था। यही कारण है कि उर्दू पत्रकारिता को "मिशनरी पत्रकारिता" कहा जाता है।

विभाजन के बाद उर्दू पत्रकारिता

1947 के विभाजन ने उर्दू पत्रकारिता को गहरा आघात पहुँचाया। देश का बँटवारा, जनसंहार, विस्थापन और उर्दू को एक समुदाय विशेष से जोड़ देने की प्रवृत्ति ने उर्दू अख़बारों के पाठक वर्ग को सीमित कर दिया। अनेक प्रतिष्ठित अख़बार बंद हो गए या आर्थिक संकट में घिर गए। फिर भी सियासत, रेहनुमाए दकन, ऐतमाद, मुंसिफ (हैदराबाद), इंक़लाब (मुंबई), सालार (बंगलुरु) क़ौमी आवाज़, राष्ट्रीय सहारा, अल- जमीअत, दावत, हिंदुस्तान एक्सप्रेस (उर्दू संस्करण), सहाफ़त, अख़बार ऐ मशरिक़, हमारा समाज (दिल्ली) कश्मीर उज़्मा, पासबान, लाज़वाल, राहेमंज़िल, उड़ान (जम्मू -कश्मीर) आवामी न्यूज़, तासीर, क़ौमी तंज़ीम, फ़ारूक़ी तंज़ीम, पिंदार (बिहार) अवधनामा, आग (लखनऊ) और रोशनाई जैसे अख़बारों ने उर्दू पत्रकारिता की मशाल को बुझने नहीं दिया। तमाम तरह की समस्याओं के बावजूद उर्दू समाचार पत्र देश के हर कोने से प्रकाशित हो रहे हैं। इस दौर में उर्दू पत्रकारिता ने अल्पसंख्यक अधिकारों, सामाजिक न्याय और लोकतांत्रिक मूल्यों की रक्षा को अपना मुख्य उद्देश्य बनाया।

उर्दू पत्रकारिता का वर्तमान परिदृश्य

आज के दौर में उर्दू पत्रकारिता कई चुनौतियों से जूझ रही है। प्रिंट मीडिया का संकट, पाठकों की घटती संख्या, विज्ञापन की कमी, वर्तमान सरकार की पालिसी और तकनीकी बदलाव इसके सामने बड़ी समस्याएँ हैं। इसके अलावा उर्दू को केवल एक धार्मिक या सामुदायिक भाषा के रूप में देखने की मानसिकता ने भी इसके विस्तार को बाधित किया है। हालाँकि, वर्तमान समय में उर्दू पत्रकारिता ने डिजिटल प्लेटफॉर्म पर अपनी उपस्थिति दर्ज करानी शुरू कर दी है। ई-पेपर, वेबसाइट, यूट्यूब चैनल और सोशल मीडिया के माध्यम से उर्दू पत्रकार नई पीढ़ी तक पहुँचने का प्रयास कर रहे हैं। रेख्ता, उर्दू न्यूज़ पोर्टल, और कई स्वतंत्र डिजिटल प्लेटफॉर्म उर्दू को नए पाठकों से जोड़ रहे हैं। आज की उर्दू पत्रकारिता का स्वर पहले की तुलना में अधिक व्यावहारिक और विविध है। राजनीति के साथ-साथ शिक्षा, स्वास्थ्य, महिला मुद्दे, पर्यावरण और रोज़गार जैसे विषयों पर भी ध्यान दिया जा रहा है। फिर भी संसाधनों की कमी और पेशेवर प्रशिक्षण का अभाव इसकी गुणवत्ता को प्रभावित करता है।

भविष्य की संभावनाएँ और चुनौतियाँ

उर्दू पत्रकारिता का भविष्य चुनौतियों के साथ-साथ संभावनाओं से भी भरा है। डिजिटल युग ने भाषा की सीमाओं को तोड़ दिया है। यदि उर्दू पत्रकारिता तकनीक को अपनाए, आधुनिक पत्रकारिता के मानकों पर खुद को ढाले और विषयों में विविधता लाए, तो इसका भविष्य उज्ज्वल हो सकता है।

इसके लिए ज़रूरी है कि:

डिजिटल माध्यमों को अपनाया जाए – वेबसाइट, मोबाइल ऐप और सोशल मीडिया के ज़रिए नई पीढ़ी को जोड़ा जाए।

पेशेवर प्रशिक्षण पर ज़ोर दिया जाए – उर्दू पत्रकारों को आधुनिक पत्रकारिता, डेटा जर्नलिज़्म और मल्टीमीडिया स्किल्स से लैस किया जाए।

भाषा को सरल और समकालीन बनाया जाए – अत्यधिक कठिन और पुरातन शब्दावली से बचते हुए संप्रेषण को सहज बनाया जाए।

सरकारी और संस्थागत सहयोग – उर्दू मीडिया को संरक्षण और विज्ञापन नीति में न्यायपूर्ण स्थान मिले।

भविष्य की उर्दू पत्रकारिता यदि केवल अतीत की विरासत पर निर्भर न रहकर वर्तमान की ज़रूरतों को समझे, तो यह एक बार फिर समाज की मुख्यधारा में प्रभावी भूमिका निभा सकती है।

मेरा विचार है कि उर्दू पत्रकारिता केवल एक भाषा की पत्रकारिता नहीं, बल्कि एक विचारधारा, एक सांस्कृतिक विरासत और एक ऐतिहासिक संघर्ष की कहानी है। इसके अतीत में बलिदान है, वर्तमान में संघर्ष है और भविष्य में आशा। यदि समय की माँग के अनुसार इसमें आवश्यक बदलाव किए जाएँ, तो उर्दू पत्रकारिता न केवल जीवित रहेगी, बल्कि नई ऊर्जा के साथ समाज को दिशा भी देगी। उर्दू पत्रकारिता का असली भविष्य इसी में है कि वह अपनी आत्मा को बनाए रखते हुए समय के साथ कदम मिलाए—यही उसकी सबसे बड़ी शक्ति भी है।।

■■■

मीडिया स्वास्थ्य की बहाली में सोशल मीडिया की भूमिका

जगदीश गौतम

प्रसिद्ध लेखक वेल्स हेंजेन ने After Nehru, Who में भारत के मध्य वर्ग को अत्यधिक लालची और सार्वजनिक नीतियों के प्रति उदासीन बताया था। आज भी यह हकीकत कमोबेश सही है -अधिकांश लोग बिना पर्याप्त जानकारी के सार्वजनिक मुद्दों पर टिप्पणी करते हैं और स्वयं को हर विषय का विशेषज्ञ मान लेते हैं।

वर्षों पहले एक मित्र से टीवी पर प्रसारित निम्न-स्तरीय सामग्री पर चर्चा हुई। मैंने कहा कि ऐसी सामग्री के बारे में मुझे जानकारी ही नहीं, क्योंकि मैं वह चैनल देखता नहीं। मेरे उत्तर पर उसने आश्चर्य व्यक्त किया, लेकिन मूल प्रश्न यही था—यदि कोई सामग्री खराब है तो उसे देखा ही क्यों जाए? यह साधारण-सा अनुभव एक गहरी सच्चाई को रेखांकित करता है: मीडिया का अस्तित्व उसके उपभोक्ताओं पर निर्भर है। जिस सामग्री की माँग नहीं होगी, वह स्वतः समाप्त हो जाएगी। दुर्भाग्य से, गुणवत्तापूर्ण पत्रकारिता का समर्थन करने के बजाय अनेक लोग मीडिया का उपयोग निजी पसंद और हितों की पूर्ति के लिए करते हैं। यही प्रवृत्ति मीडिया की गिरावट में प्रमुख कारण रही है।

शहरी भारत में मीडिया की आलोचना तो बहुत होती है, परन्तु मीडिया साक्षरता का स्तर अत्यंत निम्न है। उद्योग पर ऐसे लोगों का प्रभाव बढ़ गया है जो मुद्दों का समाधान प्रस्तुत करने के बजाय नैरेटिव निर्माण में अधिक रुचि रखते हैं। इसके बावजूद मीडिया सामाजिक और आर्थिक परिवर्तन का एक अनिवार्य साधन है जिसे उपेक्षित नहीं छोड़ा जा सकता।

इसीलिए समय की माँग है कि प्रिंट, प्रसारण और डिजिटल—तीनों माध्यमों में व्यापक सुधार के लिए एक सुनियोजित अभियान चलाया जाए। लोगों को जोड़ने और प्रभावी जनमत निर्मित करने के लिए एक सशक्त मंच की आवश्यकता है। सोशल मीडिया—जैसे व्हाट्सएप, ट्विटर, फेसबुक, इंस्टाग्राम—इस उद्देश्य के लिए आदर्श उपकरण हो सकते हैं, क्योंकि इनकी पहुँच विशाल है और संचालन लगभग निःशुल्क।

वर्तमान परिस्थिति हालांकि निराशाजनक है। सोशल मीडिया पर 90 प्रतिशत सामग्री तुच्छ संदेशों, जन्मदिन की बधाइयों, स्कूल के कार्यक्रमों, राजनीतिक फॉरवर्ड और 'गुड मॉर्निंग' संदेशों से भरी होती है। विडंबना यह है कि पारंपरिक मीडिया की आलोचना करने वाले ही इस सतहीपन को बढ़ावा देते हैं।

यदि केवल 10 प्रतिशत उपयोगकर्ता भी अपनी ऊर्जा को हल्की-फुल्की पोस्टों से हटाकर सार्वजनिक नीतियों पर गंभीर, रचनात्मक बहस की ओर मोड़ दें, तो राष्ट्रीय विमर्श की गुणवत्ता में उल्लेखनीय सुधार आ सकता है। पाठक, दर्शक और श्रोता होने के नाते जनता के पास मीडिया के चरित्र और दिशा को बदलने की अपार शक्ति है।

सोशल मीडिया का सही उपयोग मीडिया सुधार की दिशा में निर्णायक भूमिका निभा सकता है। उच्च-स्तरीय टीवी कार्यक्रमों, विश्वसनीय पत्रकारिता और सारगर्भित रेडियो प्रसारण की सामूहिक माँग मीडिया संस्थानों को अपनी प्राथमिकताएँ बदलने के लिए बाध्य कर सकती है।

अब आवश्यकता है कि हम नकारात्मकता और राजनीतिक पूर्वाग्रहों से ऊपर उठकर ऐसे मीडिया की माँग करें जो सामाजिक मूल्यों की रक्षा करे और देश के महत्वपूर्ण प्रश्नों पर प्रकाश डाले। सोशल मीडिया, अपनी सभी सीमाओं के बावजूद, मुख्यधारा मीडिया के पतन पर अंकुश लगाने का प्रभावी माध्यम बन सकता है।

मीडिया में विश्वास बहाल करने, आलोचनात्मक विचार-विमर्श को प्रोत्साहित करने और जागरूक नागरिक सहभागिता को बढ़ाने के लिए सामूहिक प्रयास आवश्यक है। ऐसा करके हम न केवल लोकतांत्रिक संस्थाओं को मजबूत करेंगे, बल्कि इस बात को भी निश्चित करेंगे कि मीडिया समाज का सशक्त स्तंभ बना रहे।

■■■

क्या संभव है पत्रकार-स्वामित्व वाला मीडिया मॉडल?

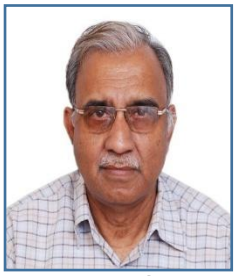

गोपाल मिश्र

प्रधानमंत्री द्वारा आत्मनिर्भर भारत की अवधारणा प्रस्तुत किए जाने के बाद यह प्रश्न प्रासंगिक हो गया है कि क्या भारत में एक आत्मनिर्भर समाचार मीडिया प्रणाली विकसित की जा सकती है, जो पेशेवर पत्रकारों को अव्यवसायिक और शोषक स्वामियों के दबाव से मुक्त कर सके?

क्या पत्रकार-स्वामित्व वाला मीडिया संगठन व्यावहारिक है?

मुख्य प्रश्न यह है कि क्या पेशेवर और आर्थिक स्तर पर पत्रकारों के स्वामित्व वाली मीडिया इकाई स्थापित करना संभव है?

क्या ऐसा मॉडल पत्रकारों को शोषण से मुक्त कर सकता है तथा मीडिया में व्याप्त विकृतियों से भी मुक्ति दिला सकता है?

कई अनुभवी पत्रकार इस विचार को अव्यावहारिक मानते हैं। उनका तर्क है कि समाचार-संग्रहण और उत्पादन की लागत अत्यधिक है। लेकिन एक महत्वपूर्ण प्रश्न यह भी है:

यदि पत्रकार स्वयं नियंत्रित आत्मनिर्भर मीडिया के विकल्प पर विचार ही न करें, तो फिर उनके सामने विकल्प क्या है?

क्या वे गैर-पेशेवर और अहंकारी नियोक्ताओं के अधीन रहकर उत्पीड़न और अपमान का वातावरण झेलते रहें, या एक स्वतंत्र और सम्मानजनक पत्रकारिता के लिए नया रास्ता चुनें?

छोटा ही सुंदर है: मानसिकता में बदलाव की आवश्यकता पत्रकारिता के स्वभाव के कारण समाचारकर्मियों का झुकाव बड़े नामों और बड़े मंचों पर केंद्रित रहता है। वे अक्सर छोटी संस्थाओं में काम करते हुए भी बड़े ब्रांड की मानसिकता से ही सोचते हैं। यदि पत्रकार वास्तव में आत्मनिर्भर होना चाहते हैं तो उन्हें "बड़े" के मोह से हटकर "छोटा ही सुंदर है" के विचार को अपनाना होगा।

इसी दृष्टि से भारतीय जनसंचार संस्थान (IIMC) में वर्षों पूर्व सूक्ष्म स्तर की पत्रकारिता (Micro-level Journalism) का एक पाठ्यक्रम शामिल किया गया था, जिसमें छोटे पत्र-पत्रिकाओं के महत्व और उनकी तकनीकों पर बल दिया गया।

छोटी टीमों में बड़ी संभावनाएँ

यदि प्रतिभाशाली और स्वाभिमानी पत्रकार तीन-चार सदस्यों के छोटे समूह बनाकर साप्ताहिक या पाक्षिक पत्र निकालने का प्रयास करें, निश्चित रूप से सफल हो सकते हैं।

स्पष्ट परिभाषित क्षेत्र और लक्षित पाठक-वर्ग उन्हें अपने प्रभाव क्षेत्र पर बेहतर नियंत्रण दे सकता है।इस तरह के कुछ प्रयास नेबरहुड न्यूज़पेपर के रूप में हुए भी हैं, परंतु वे प्रायः गैर-पत्रकार लोगों द्वारा NGO मॉडल पर आधारित होने के कारण सफल नहीं हो पाए। आवश्यकता है पेशेवर, कठोर समाचार-पत्रकारिता की—न कि मीडिया साक्षरता अभियान की।

विकेन्द्रीकृत समाचार-मॉडल समय की मांग

समाचार के विकेन्द्रीकरण की अवधारणा को समझकर यदि इसे लागू किया जाए तो भारत में एक महत्वपूर्ण प्रिंट मीडिया क्रांति संभव है।

समर्पण, परिश्रम और ईमानदारी से छोटे मीडिया संगठनों की शुरुआत न केवल पत्रकारों को स्वतंत्रता देगी, बल्कि इस पेशे की खोई हुई प्रतिष्ठा लौटाने में भी मदद करेगी। डिजिटल प्लेटफॉर्म-यूट्यूब चैनल और वेबसाइटें-पहले ही इस दिशा में मार्ग दिखा रहे हैं। आवश्यकता केवल पेशेवर इच्छा-शक्ति और सामूहिक प्रयास की है।

(वरिष्ठ पत्रकार गोपाल मिश्रा राजनीतिक विश्लेषक, लेखक और मीडिया एक्टिविस्ट हैं। अपने लंबे करियर में वे कई भारतीय और विदेशी समाचारपत्रों से जुड़े रहे हैं।)

■■■

भारतीय पुन: जागरण के प्रणेता स्वामी विवेकानंद

मीडिया मैप न्यूज़ नेटवर्क

12 जनवरी 1863 को जन्मे युगद्दष्टा स्वामी विवेकानंद ने केवल 30 वर्ष की आयु में जो संदेश विश्व को दिया, वह आज 21वीं सदी के भारत में पहले से कहीं अधिक प्रासंगिक है। 1893 में शिकागो के विश्व धर्म संसद में दिया गया उनका ऐतिहासिक उद्घाटन भाषण न केवल भारत की आध्यात्मिक चेतना का घोष था, बल्कि वैश्विक मानवता के लिए शांति और सद्भाव का स्थायी संदेश भी था।

स्वामी विवेकानंद के संबोधन की शुरुआत- "Sisters and Brothers of America"—ने पूरी सभा को मंत्रमुग्ध कर दिया। दो मिनट तक तालियों की गड़गड़ाहट उनके शब्दों का स्वागत करती रही। यह केवल एक भाषण नहीं था; यह भारत की वसुधैव कुटुंबकम् की भावना का विश्व के सामने विराट उद्घोष था।

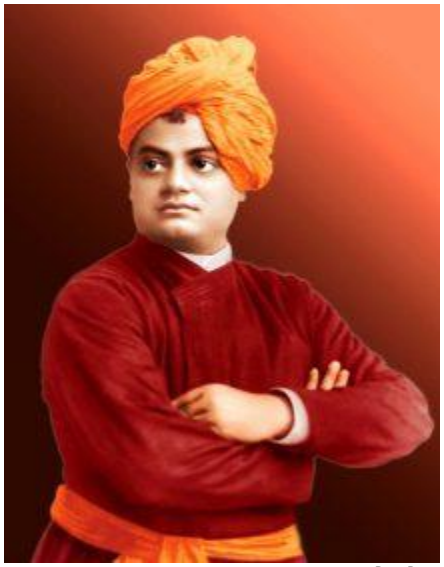

उन्होंने स्पष्ट संदेश दिया—
सभी धर्म सत्य की ओर जाने वाले मार्ग हैं; किसी में विरोध नहीं, सबका लक्ष्य मानवता का कल्याण है।

19 और 20 सितंबर को दिए गए अपने शोधपत्रों में उन्होंने धर्म, सम्प्रदाय और मानव मूल्यों के बीच वास्तविक संबंध स्पष्ट किए। 20 सितंबर को उनका यह कथन और भी दूरदर्शी था—
"भारतीयों की सबसे बड़ी जरूरत धर्म नहीं, बल्कि गरीबी दूर करना है।"
भारत के लिए यह एक क्रांतिकारी उद्घोष था—एक ऐसा विचार जो आज भी राजनीतिक और सामाजिक विमर्श का आधार होना चाहिए।

"उत्तिष्ठत जाग्रत" — राष्ट्रचेतना का शाश्वत आह्वान
1896 के लाहौर भाषण में स्वामी विवेकानंद ने कठोपनिषद का यह अद्भुत मंत्र पूरे भारत में इस प्रकार फैलाया कि वह स्वतंत्रता सेनानियों का संघर्ष-मंत्र बन गया—
"उठो, जागो, और तब तक न रुको जब तक लक्ष्य न प्राप्त हो जाए।"
इस मंत्र के प्रत्येक शब्द में एक सम्पूर्ण दर्शन निहित है:

1. उत्तिष्ठत - उठो, आलस्य त्यागो।
2. जाग्रत - जागो, मोह और भ्रम से बाहर आओ।
3. प्राप्य वरान् - श्रेष्ठ जनों से सीखो, सही मार्गदर्शन लो।
4. निबोधत - ज्ञान प्राप्त करो, आत्मबोध को अपनाओ।

यह केवल आध्यात्मिक संदेश नहीं था; यह भारत की राष्ट्र-निर्माण प्रक्रिया का मूल सिद्धांत बन गया। स्वामी जी जानते थे कि भारत को आज़ाद करने से पहले भारतीयों को अंदर से जगाना आवश्यक है।

विवेकानंद के प्रमुख व्याख्यानों में इस मंत्र का प्रयोग
1. लाहौर भाषण-"The Gita and Its Message
"यहीं उन्होंने पहली बार स्पष्ट रूप से इसे राष्ट्रीय आह्वान के रूप में प्रस्तुत किया।
2. मद्रास (चेन्नई) के युवा-संदेश
यहां वे बार-बार कहते -"भारत को जगाना है, युवाओं

को शेरदिल बनना होगा।"

3. कलकत्ता में 'My Plan of Campaign'

प्लेग-काल में राष्ट्र-निर्माण और समाज-सेवा के लिए यह मंत्र उनका उपकरण बना।

4. रामकृष्ण मिशन के कार्यकर्ताओं को संदेश (1898)

उन्होंने इसे कर्मशीलता, निस्वार्थ सेवा और चरित्र-निर्माण का आधार बताया।

स्वामी जी प्रत्यक्ष राजनीतिक भाषण कम देते थे, लेकिन उनके विचार स्वतंत्रता-आंदोलन की आत्मा बन गए। उनका केंद्रीय संदेश था—

"जब तक भारत का मन गुलाम है, तब तक भारत स्वतंत्र नहीं हो सकता।"

यह वाक्य स्वतंत्रता संग्राम की आत्मा था। उन्होंने बार-बार कहा—

"कमजोर राष्ट्र स्वतंत्र नहीं रह सकता।

तीन चीज़ें आवश्यक हैं—

हृदय में प्रेम, मस्तिष्क में ज्ञान और बाहु में शक्ति।"

उनकी दृष्टि में स्वतंत्रता की पहली शर्त शक्ति थी—शारीरिक, मानसिक और सामाजिक।

मानसिक दासता पर प्रहार

स्वामी विवेकानंद ने भारत की दासता की जड़ को पहचाना:

"हम इसलिए गुलाम हुए क्योंकि हमने अपनी शक्ति को भूलकर छोटेपन को अपना लिया।"

यह विचार क्रांतिकारी था। उन्होंने कहा—

"दासता बाहर की नहीं, भीतर की होती है।"

यही वह आग थी जिसने भारतीय समाज को भीतर से झकझोरा। जातिगत संकुचन, सामाजिक जड़ता और आत्महीनता के अंधकार में उनके शब्द प्रकाश-स्तंभ की तरह चमके—

"उठो, जागो, स्वयं को पहचानो—तुममें अपार शक्ति है।"

ये शब्द आगे चलकर वह आत्मविश्वास बने जिसके सहारे अनेक क्रांतिकारी फांसी के तख़्ते पर हँसते हुए चढ़े।

स्वतंत्रता आंदोलन के नेताओं पर विवेकानंद का प्रभाव

विवेकानंद के विचारों की ज्वाला ने राष्ट्रीय नेताओं को गहराई से प्रभावित किया:

1. नेताजी सुभाषचंद्र बोस

"स्वामी विवेकानंद भारत की राष्ट्रीय चेतना के निर्माता हैं। "बोस केवल पांच वर्ष के थे जब स्वामी जी का महाप्रयाण हुआ, पर उनके लेखन और व्यक्तित्व ने नेताजी के जीवन में स्थायी छाप छोड़ी।

2. महर्षि अरविन्द

उन्होंने स्वीकार किया कि उनका राष्ट्रवाद विवेकानंद के विचारों से ही विकसित हुआ।

3. लोकमान्य तिलक, लाला लाजपत राय, भगत सिंह सभी पर विवेकानंद के साहस, चरित्र और आत्मबल के विचारों का प्रभाव स्पष्ट है।

विवेकानंद ने भारतीयों को यह अहसास कराया कि वे किसी दया के पात्र नहीं, बल्कि विश्व को दिशा देने वाली सभ्यता के उत्तराधिकारी हैं।

उन्होंने कहा—

"एक मजबूत मन, एक पवित्र हृदय और एक साहसी शरीर—इन्हीं पर स्वतंत्र भारत का निर्माण होगा।"

उनकी दृष्टि में शिक्षा सबसे बड़ी क्रांति थी—

ऐसी शिक्षा जो:

- व्यक्ति में निर्भीकता जगाए,
- समाज को एकजुट करे,
- स्त्री को शक्तिमती बनाए,
- और राष्ट्र को आत्मविश्वास दे।

उनका राष्ट्रवाद आत्म-शक्ति पर आधारित था, न कि केवल राजनीतिक संघर्ष पर।

आज जब भारत स्वतंत्रता के 79 वर्ष पूरे कर चुका है, तब भी देश का सबसे बड़ा मुद्दा गरीबी है—ठीक वही बात जिसे स्वामी जी ने 1893 में कहा था—

"भारतीयों की सबसे बड़ी जरूरत 'धर्म' नहीं, बल्कि 'गरीबी' दूर करना है।"

आज राजनीतिक विमर्श में जब धार्मिक पहचानों को उभारकर समाज को बांटने की प्रवृत्तियाँ बढ़ रही हैं, तब विवेकानंद का यह संदेश और भी निर्णायक बन जाता है कि—

"धर्म का वास्तविक उद्देश्य मनुष्य को शक्तिशाली, दयालु और कर्तव्यनिष्ठ बनाना है—विभाजित करना नहीं।"

उनका योगदान विचारों की शक्ति से था—एक ऐसी शक्ति जिसने करोड़ों भारतीयों को यह एहसास कराया कि उनका अस्तित्व केवल उपनिवेश के नागरिकों का नहीं, बल्कि एक महान सांस्कृतिक राष्ट्र के उत्तराधिकारियों का है।और इसी विचार ने अंततः 1947 की आज़ादी को दिशा दी। ■■■

नेताजी सुभाष बाबू के जीवन का अध्यात्मिक पहलू

चंद्र कुमार एडवोकेट

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में नेताजी सुभाष चन्द्र बोस जितने बड़े क्रांतिकारी थे, उतने ही गहरे आध्यात्मिक भी। नेताजी का पूरा जीवन यह संदेश देता है—अगर आत्मा जाग जाए, तो इंसान अजेय योद्धा बन जाता है।

नेताजी के अध्यात्म का मूल आधार था स्वामी विवेकानंद द्वारा दिया गया सूत्र "भगवद्गीता का कर्मयोग"। उन्होंने गीता को सिर्फ धर्मग्रंथ नहीं, बल्कि युद्ध-नीति और साहस का शास्त्र माना। भगवद्गीता से उन्होंने तीन सूत्र अपनाए—निष्काम कर्म, निर्भीकता और राष्ट्रभक्ति। यही कारण था कि वे संघर्ष को कभी हिंसा का रूप नहीं बल्कि कर्तव्य का अनिवार्य मार्ग मानते थे। उनके शब्दों में—"कर्तव्य ही हमारा धर्म है, और धर्म के लिए बलिदान हमारा सबसे बड़ा यज्ञ।" यह दृष्टि साधारण नहीं, बल्कि गीता में वर्णित उस आत्मविश्वास की प्रतिध्वनि थी, जो मनुष्य को मृत्यु से भी ऊपर उठा देती है।

यह ध्रुव सत्य है कि नेताजी के भीतर अध्यात्म की गहराई 'स्वामी विवेकानन्द जी' के पाठ से निर्मित हुआ। किशोरावस्था में जब उन्होंने विवेकानन्द को पढ़ा, तो उनके जीवन का आयाम बदल गया, स्वामी जी का "उतिष्ठत जाग्रत" का महामंत्र उन्हें आई.सी.एस. जैसा सम्मानित सर्वोच्च पद का त्याग और कंटकाकीर्ण संघर्ष का मार्ग अपनाने के लिए प्रेरित कर दिया, जो नेताजी का "जीवन-मंत्र" बन गया। स्वामी जी से सुभाष बाबू ने सीखा कि "सेवा ही अध्यात्म है, शक्ति ही धर्म है, और कमजोर राष्ट्र कभी स्वतंत्र नहीं हो सकता।" यही कारण था कि सुभाष बाबू का 'अध्यात्म' कभी पलायनवादी नहीं हुआ, वह शक्ति-साधना का तेजोमय मार्ग था। सुभाष बाबू ध्यान, उपवास, संयम और कठोर अनुशासन में महायोगी थे—एक ऐसा महायोगी जो अपनी सम्पूर्ण आंतरिक और बाह्य शक्ति राष्ट्र के लिए समर्पित कर चुका था।

सुभाष बाबू का अद्वैत वेदान्त में गहरा विश्वास था। वे राष्ट्र और व्यक्ति को अलग नहीं मानते थे। राष्ट्र की सेवा उनके लिए वैयक्तिक मुक्ति से भी बड़ा तप था। सुभाष बाबू का व्रत था—"राष्ट्र-हित ही सर्वोच्च तप है, और प्रत्येक सैनिक इस तप का साधक।" यही कारण था कि आज़ाद हिन्द फौज सिर्फ सैनिकों का समूह नहीं, बल्कि एक आध्यात्मिक परिवार भी था—जिसमें हिन्दू, मुसलिम, सिख, ईसाई सभी एक सूत्र में बंधे थे। सुभाष बाबू के शब्दों में यह भारतीय अध्यात्म का सार्वभौम स्वरूप था, जहाँ मानवता और राष्ट्र सर्वोच्च मूल्य पर आधारित था ।

सुभाष बाबू की करुणा भी अद्वितीय थी। वे सैनिकों को सिर्फ लड़ाकू योद्धा नहीं, बल्कि अपने परिवार का सदस्य मानते थे। कई बार वे रातों में घायल जवानों के पास बैठते, उनका हाथ पकड़ते और कहते—"हम स्वतंत्रता के लिए लड़ रहे हैं, पर मानवता का कर्तव्य पहले है।" यह करुणा, सनातन परंपरा से निकले उस भारतीय आध्यात्मिक संस्कार का जीवंत रूप थी, जिसे सुभाष बाबू ने हृदय में धारण किया था।

सुभाष बाबू का सबसे प्रभावशाली था "मृत्यु-दर्शन"। नेताजी मृत्यु से नहीं डरते थे, सुभाष बाबू मृत्यु को "राष्ट्र के यज्ञ में चढ़ाया जाने वाला पवित्र अर्घ्य मानते थे"। उनका विश्वास था कि "जो मृत्यु से हार गया, वह जीवन में कुछ भी नहीं जीत सकता।" यही दर्शन उन्हें अजेय बनाता था। सुभाष बाबू का अध्यात्म भक्ति का नहीं, बल का, त्याग का, तप का, निर्भीकता का और राष्ट्र-सेवा का अध्यात्म था। वे स्वतंत्रता संग्राम में खड़े एक महायोद्धा थे, पर भीतर से एक तपस्वी सैन्य कमांडर और आत्मा से एक महायोगी। नेताजी ने सिद्ध कर दिया कि जब अध्यात्म कर्म से जुड़ जाए, तब मनुष्य इतिहास बदल देता है।

भारत के इतिहास में दो ऐसे महापुरुष, जिनकी दृष्टि, तेज और त्याग ने चेतना को झकझोर कर रख दिया - स्वामी विवेकानंद और नेताजी सुभाष चंद्र बोस। दोनों ही क्रांति के अग्रदूत-संवाहक, एक आध्यात्मिक क्रांति तो दूसरे आजादी की क्रांति । दोनों ही नौजवानों के उत्प्रेरक, मार्गदर्शक। लेकिन प्रश्न यह उठता है-क्या इन दो महापुरुषों की कभी मुलाकात हुई थी? उत्तर है - कभी नहीं, उनकी प्रत्यक्ष मुलाकात नहीं हुई, परंतु यह इतिहास का अंत नहीं यहीं से आरम्भ होती है नेता जी की अद्भुत जीवन यात्रा!

सुभाष बाबू के भीतर की क्रांति: स्वामी जी की आध्यात्मिक क्रांति: "स्वामी विवेकानंद और नेताजी सुभाष बोस-- शताब्दियों को जोड़ती दो ज्वालामुखी आत्माओं का अदृश्य संगम" भारत की स्वतंत्रता–गाथा में दो ऐसे नाम, जिनका प्रभाव आज भी राष्ट्र के दिलों में धड़कता है। दोनों में अद्भुत साहस, आग जैसी राष्ट्रभक्ति और अतुलनीय नेतृत्व क्षमता थी।

हर वर्ष माह जनवरी की - 12 तारीख को स्वामी विवेकानन्द का जन्मदिन "युवा दिवस" के रूप तो नेता जी का जन्मदिन 23 जनवरी को 'पराक्रम दिवस' के रूप में मानते है- क्या अद्भुत संयोग है "युवा-पराक्रम" का ,जो एक ही माह में महज 12 दिनों के अंतर् पर मनाया जाता है। स्वामी विवेकानंद (1863–1902- महज 38 वर्ष की आयु) और नेताजी सुभाष चंद्र बोस (1897–1945- महज 48 वर्ष की आयु) की प्रत्यक्ष मुलाकात कभी नहीं हुई। क्योंकि जब स्वामी विवेकानंद का महापरिनिर्वाण 1902 में हुआ, तब नेताजी महज पाँच वर्ष के बच्चे थे ,परंतु कहानी यहाँ समाप्त नहीं होती—दरअसल यहीं से एक अद्भुत,अदृश्य, ऐतिहासिक और आध्यात्मिक मिलन शुरू होता है। अदृश्य मुलाकात, जो दिखी नहीं, पर घटित हुई, परिलक्षित हुई, स्वामी विवेकानंद ने जिस "नये उत्कृष्ट भारत" का स्वप्न देखा था—निडर, तेजस्वी और आत्मविश्वासी भारत—उसी स्वप्न को सबसे गहरे स्तर पर समझकर आगे बढ़ाने वाले थे, 'नेताजी सुभाष चंद्र बोस' अर्थात प्रकृति को अच्छी तरह पता होता है कि आगे के कार्य के लिए किसे तैयार करना है।

नेता जी पर स्वामी जी का गहरा प्रभाव — 'आग से आग' का मिलन सुभाष चंद्र बोस किशोर अवस्था से ही विवेकानंद के साहित्य के दीवाने थे। वे कहते थे—"स्वामी विवेकानंद मेरे आध्यात्मिक गुरु और भारत के पुनर्जागरण के प्रथम संदेश वाहक हैं। उन्होंने स्वामीजी का जीवन- संदेश पढ़कर अपने भीतर वही ज्वाला जगाई, वही निडरता विकसित की, वही राष्ट्र–समर्पण का संकल्प लिया।

नेतृत्व शैली में समानता — यह संयोग नहीं, प्रभाव था, दोनों में अद्भुत समानताएँ थी — दोनों ने "भय" को सबसे बड़ा शत्रु माना। दोनों ने "भारत" को 'मां' के रूप में और अपने को पुत्र के रूप में देखा। दोनों ने "कर्म और त्याग" को जीवन का 'धर्म' कहा और दोनों ने युवाओं को राष्ट्र–निर्माण का केंद्र बनाया। ये समानताएँ बताती हैं कि नेताजी को स्वामी जी के विचारों ने कितना प्रभावित किया - तो क्या यह मुलाकात से भी बड़ी घटना नहीं थी ?

कभी–कभी इतिहास में 'शरीर' नहीं 'विचार' मिलते हैं—और वही राष्ट्र को बदल देते हैं। स्वामी विवेकानंद ने जिस आध्यात्मिक राष्ट्रवाद की ज्वाला जगाई थी, नेताजी ने उसी को स्वाधीनता के रण - संग्राम में बदल दिया।

दोनों की प्रत्यक्ष मुलाकात भले न हुई हो, पर विचारों की मुलाकात ने भारत को दो अमर नायक दिए, जिन्होंने स्वतंत्रता के भविष्य को दिशा ही नहीं दी बल्कि आजादी के इतिहास को गढ़ा । स्वामी विवेकानंद प्रेरणा थे—नेताजी उस प्रेरणा के मूर्त रूप। एक ने राष्ट्र को जगाया—दूसरे ने उस जागरण को आज़ादी के रण-भेरी में बदल दिया।इसीलिए इतिहास कहता है—शरीर भले ही न मिले, पर आत्माएँ एक दूसरे को पहचानकर युगों को बदल सकती हैं। ■■■

बजट : स्थिर आर्थिक व्यवस्था पर कठिन विकल्प आवश्यक

शिवाजी सरकार

आर्थिक पैमानों के अनुसार, भारत को वित्त वर्ष 2026-27 (**FY**27) के बजट चक्र में आराम की स्थिति के साथ प्रवेश करना चाहिए। आर्थिक वृद्धि के 7 प्रतिशत से ऊपर बने रहने की उम्मीद है, महंगाई महामारी के बाद के शिखर से नीचे आई है, और राजकोषीय समेकन मोटे तौर पर पटरी पर दिखता है—जिसमें घाटा जीडीपी के लगभग 4.4 प्रतिशत तक आने का अनुमान है। सतह पर देखें तो सुस्त वैश्विक माहौल के बीच अर्थव्यवस्था मजबूत, प्रतीत होती है।

लेकिन बजट आराम के लिए नहीं, तनाव का पूर्वानुमान लगाने के लिए बनाए जाते हैं। आश्वस्त करने वाले समग्र आंकड़ों के नीचे ऐसी संरचनात्मक दबाव छिपे हैं जिन्हें **FY**27 का बजट नज़रअंदाज़ नहीं कर सकता—कमजोर घरेलू बचत, भटके हुए सार्वजनिक व्यय, हिचकता विनिर्माण क्षेत्र, नाज़ुक निजी निवेश, बाहरी व्यापार जोखिम, और कम उत्पादकता के जाल में फंसी कृषि अर्थव्यवस्था। संक्षेप में, स्थिरता ठहराव के जोखिम को ढक रही है।

भारत के हालिया राजस्व प्रदर्शन को उत्साही अप्रत्यक्ष करों, बेहतर अनुपालन और स्थिर नाममात्र वृद्धि से लाभ मिला है। लेकिन इस राजस्व की गुणवत्ता मायने रखती है। **FY**24 में शुद्ध घरेलू वित्तीय बचत गिरकर जीडीपी के 5.2 प्रतिशत पर आ गई—दशकों में सबसे निचला स्तर—जबकि घरेलू ऋण बढ़ा। इससे संकेत मिलता है कि कर उछाल आंशिक रूप से इस कारण है कि घराने अधिक उपभोग कर रहे हैं और कम बचत कर रहे हैं।

यह टिकाऊ राजकोषीय आधार नहीं है। जिन घरानों के बफर घट रहे हों, उनसे अनिश्चितकाल तक राजस्व नहीं निकाला जा सकता। इसलिए **FY**27 के बजट को उपभोग-आधारित राजस्व पर अत्यधिक निर्भरता से बचना चाहिए और औपचारिक रोजगार व उत्पादक निवेश की वृद्धि के माध्यम से कर आधार को व्यापक बनाना चाहिए, न कि पहले से दबाव में पड़े घरेलू वित्त में और गहरी पैठ बनाकर।

FY21 से सार्वजनिक व्यय का झुकाव पूंजीगत व्यय (कैपेक्स) की ओर रहा है, और अब केंद्रीय कैपेक्स 11 लाख करोड़ रुपये से अधिक है। इससे वृद्धि को सहारा मिला है और भौतिक अवसंरचना में सुधार हुआ है। लेकिन खर्च की संरचना बढ़ते असंतुलन को दिखाती है।

मानव पूंजी में निवेश—शिक्षा, कौशल, स्वास्थ्य और शोध—काफी पीछे रहा है। शिक्षा पर खर्च जीडीपी के लगभग 3 प्रतिशत के आसपास ठहरा हुआ है, शिक्षक पद खाली हैं, और सीखने के परिणाम निराशाजनक बने हुए हैं। अनुसंधान एवं विकास (**R&D**) पर खर्च जीडीपी के करीब 0.7 प्रतिशत पर अटका है, जो सफल विनिर्माण और नवाचार-आधारित अर्थव्यवस्थाओं से बहुत कम है।

FY27 के बजट को इस झुकाव को ठीक करना होगा। कौशल के बिना अवसंरचना ऐसे परिसंपत्तियां बना सकती है जिनमें उन्हें आत्मसात करने की क्षमता न हो। समय के साथ, यह सार्वजनिक निवेश के प्रतिफल को ही कमजोर करता है।

विनिर्माण भारत की वृद्धि कथा की सबसे कमजोर कड़ी बना हुआ है। नीति-स्तर पर जोर के बावजूद, क्षमता उपयोग अभी उस दहलीज से नीचे है जो बड़े पैमाने के निजी निवेश को प्रेरित करे। सीमेंट, स्टील, बिजली जैसे कोर सेक्टरों की वृद्धि धीमी पड़ी है, जो औद्योगिक मांग में नरमी का संकेत देती है।

उत्पादन-से-प्रोत्साहन (**PLI**) योजनाओं ने कुछ क्षेत्रों को मदद दी है, लेकिन विनिर्माण की वृद्धि केवल प्रोत्साहनों पर नहीं टिक सकती। इसके लिए पूर्वानुमेय विनियमन, तेज मंजूरियां, भरोसेमंद लॉजिस्टिक्स और समय पर भुगतान चाहिए। **FY**27 का बजट योजनाओं के विस्तार से हटकर इन अड़चनों को

दूर करने पर ध्यान दे।

विनिर्माण के पुनरुत्थान के बिना, अवसंरचना पर खर्च नौकरियों और निर्यात के उत्प्रेरक की बजाय अपने आप में लक्ष्य बन जाने का जोखिम रखता है।

एक दशक पहले की तुलना में कॉरपोरेट बैलेंस शीट मजबूत हैं, फिर भी निजी कैपेक्स सतर्क बना हुआ है। कारण जाने-पहचाने हैं पर अब तक हल नहीं हुए: सरकारी भुगतान में देरी, नियामकीय अनिश्चितता, और एमएसएमई ऋण प्रणाली जो दीर्घकालिक क्षमता निर्माण के बजाय अल्पकालिक तरलता को तरजीह देती है।

बजट को सरकारी भुगतान में देरी पर स्वचालित दंडात्मक ब्याज अनिवार्य करना चाहिए और बकाया का पारदर्शी, तिमाही डैशबोर्ड प्रकाशित करना चाहिए। क्रेडिट गारंटी योजनाओं को इस तरह पुनर्रचना करनी चाहिए कि वे घूमते कार्यशील पूंजी की बजाय पूंजीगत व्यय को प्राथमिकता दें। ये कदम नए राजकोषीय प्रोत्साहनों की तुलना में निवेश को अधिक प्रभावी ढंग से आकर्षित करेंगे।

वैश्विक माहौल जटिलता की एक और परत जोड़ता है। ट्रंप-युग की टैरिफ आक्रामकता की संभावित वापसी भारत की निर्यात रणनीति के लिए जोखिम पैदा करती है, खासकर स्टील, एल्युमिनियम, फार्मा और आईटी सेवाओं में। FY**27 और उसके बाद अमेरिका के बाजारों तक सहज पहुंच मानकर नहीं चला जा सकता।**

साथ ही, भारत ने कम समय में कई एफटीए किए हैं, लेकिन निर्यात लाभ सीमित रहे हैं। कई एफटीए ने मूल्य-वर्धित निर्यात को खास बढ़ाए बिना व्यापार घाटा बढ़ाया है, जो बाजार पहुंच से अधिक घरेलू प्रतिस्पर्धात्मकता की कमजोरी को दर्शाता है। इसलिए बजट को केवल व्यापार कूटनीति नहीं, बल्कि निर्यात क्षमता—लॉजिस्टिक्स, मानक और पैमाना—पर ध्यान देना चाहिए।

रूस के साथ व्यापार का मूल्य तेजी से बढ़ा है, लेकिन यह असंतुलित है और जटिल भुगतान व्यवस्थाओं के तहत ऊर्जा आयात पर हावी है। भू-राजनीतिक रूप से उपयोगी होने के बावजूद, इस व्यापार ने भारतीय विनिर्माण निर्यात को खास बढ़ावा नहीं दिया है। बजट को यथार्थवादी होना होगा: रणनीतिक व्यापार प्रतिस्पर्धी व्यापार का विकल्प नहीं हो सकता।

कृषि आज भी लगभग आधी कार्यबल को रोजगार देती है, जबकि जीडीपी में उसका योगदान पांचवें हिस्से से कम है। उत्पादकता कम है, आय अस्थिर है और जलवायु जोखिम बढ़ रहे हैं। बजटीय समर्थन अब भी निवेश—सिंचाई, भंडारण, फसल विविधीकरण और एग्री-प्रोसेसिंग—की बजाय सब्सिडी की ओर झुका है।

ग्रामीण रोजगार योजनाओं और खरीद नीतियों में हालिया बदलाव आय के बफर को कमजोर करने का जोखिम रखते हैं, बिना विकल्प बनाए। FY**27 का बजट यहां सावधानी बरते। कमजोर कृषि आय सीधे उपभोग, बचत और राजनीतिक स्थिरता को प्रभावित करती है।**

एक विश्वसनीय कृषि रणनीति बार-बार के राजकोषीय पैबंदों की बजाय उत्पादकता बढ़ाने वाले निवेश को प्राथमिकता देगी।

डीबीटी लक्षित वितरण में सुधार के बावजूद असुरक्षा बनी हुई है। स्वास्थ्य झटके, आय में उतार-चढ़ाव और अपर्याप्त बीमा घरेलू बचत और जोखिम लेने की क्षमता को दबाते रहते हैं। जो अर्थव्यवस्था अधिक निवेश चाहती है, वह घरानों को एक बीमारी दूर संकट में नहीं छोड़ सकती।

FY27 के बजट के सामने केंद्रीय प्रश्न यह नहीं है कि क्या भारत स्थिरता बनाए रख सकता है—संभावना है कि वह रख लेगा। सवाल यह है कि क्या वह इस स्थिरता को टिकाऊ, व्यापक-आधारित वृद्धि में बदल सकता है।

इसके लिए कठिन विकल्प चाहिए होंगे: व्यय को उत्पादकता की ओर मोड़ना, निजी निवेश को रोकने वाली संस्थागत अड़चनों को दूर करना, बाहरी व्यापार झटकों के लिए तैयारी करना, और कृषि व मानव पूंजी जैसे लंबे समय से उपेक्षित क्षेत्रों का सामना करना।

भारत किसी राजकोषीय संकट का सामना नहीं कर रहा है। लेकिन वह एक संस्थागत परीक्षा के दौर में है। **FY27** का बजट बताएगा कि क्या राज्य समग्र आंकड़ों का प्रबंधन करने से आगे बढ़कर उनके नीचे की नींव को मजबूत करने के लिए तैयार है।

(वरिष्ठ पत्रकार और मीडिया एक्टिविस्ट प्रो. शिवाजी सरकार वित्तीय रिपोर्टिंग में विशेषज्ञता रखते हैं।)

■■■

जनतंत्र कबूतरबाजी का

हिंदी साहित्य की हास्य व्यंग विधा के जाने-माने हस्ताक्षर श्री अनूप श्रीवास्तव पिछले वर्ष 20 जनवरी 2025 में इस संसार को अलविदा कह कर अंतिम यात्रा को चले गए थे। उनकी प्रथम पुण्यतिथि के अवसर पर हम उनकी अंतिम लिखी हुई एक व्यंग रचना पुण्य प्रकाशित कर रहे हैं – संपादक

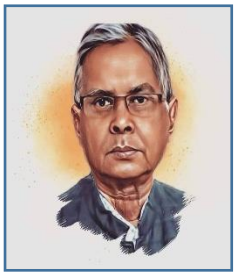

अनूप श्रीवास्तव

कबूतर बाजी का मसला जबसे बहस मुबाहिसे का हिस्सा क्या बना जुम्मन भाई! नये सिरे से उखड़े हुए हैं. उनके मुंह का जायका बदला हुआ है. अमर हमारे शौक को भी लोगों ने धंधा बना डाला. क्या जमाना था- कबूतरबाजी, बटेरबाजी, तीतरबाजी, मेढ़ेबाजी क्या क्या नहीँ होता था हमारे लखनऊ में. बनारस तक में शर्त बदकर कनकौवे उड़ाए जाते थे और गंगा पार निकल जाते थे. मात वह खाता था जिसकी हिम्मत जवाब दे जाती या उसका मंझा चुक जाता. अब न वह मंझा रहा न हिम्मत. तब बड़े से बड़े नवाब - बादशाह तक शौक फरमाते थे. लेकिन मजाल है किसी ने ऊँगली उठाई होती. अब न वह ख्वाब रहे न ख्वाबगाह. शौकों को पनाह देने वाले अल्लाह को प्यारे हो गये. हम कहां से कहाँ पहुंच गये. जिनको नाक पोछने की तमीज़ न थी वे फरमाबरदार बन गये. चिड़ीमार हो गये.

मुझे लगा जुम्मन भाई ने जड़ पकड़ ली है. उन्हें न संभाला गया तो लोकतंत्र को भी कठघरे में खड़ा किये बगैर नहीं मानेंगे. वैसे यह बात सही है कि कबूतर कभी प्रेम का तंत्र हुआ करता थे. इधर से चिट्ठी लाकर उधर डिलीवरी कर देते थे. हुआ भी यह कि दो लोगों के प्रेम में कबूतर खुद को अब्दुल्ला समझने लगा. फिर वक़्त के साथ कबूतरों को यह अहसास होने लगा कि उन्हें यूज़ किया जाने लगा है. उन्होंने तंत्र बनने से इंकार कर दिया. लेकिन उन्हें इस बात का पता नहीँ था कि उनके न रहने पर भी कबूतरबाज़ी जारी रहेगी. चिड़ीमार के बकौल जुम्मे भाई के जब उन्होंने राजनीति ंमें पैर रखे तो उनका धंधा मायाजाल में घुसपैठ कर गया. कबूतरबाजी से कहाँ पिंड छूटता. फूल टाइम के साथ पार्ट टाइम का धंधा बदस्तूर चलने लगा.

पहले कबूतरों की उड़ान देश की सीमा के रास्ते में नहीँ पड़ती थीं. कबूतरों को न तो पासपोर्ट की जरूरत पड़ती थी और ना ही बीजा की. कबूतरबाजी ने पासपोर्ट को सपोर्ट दे दिया. पास तो वह पहले से ही था. नतीजतन अब कबूतर के रूप में आदमी और धंधे और धंधे के स्वरुप में बाज़ी है. कबूतरबाजी यानि आदमी का धंधा. और जब धंधा अवैध रास्ता पकड़े तो तस्करी में बदल जाती है. और तस्करी जब तस्कर द्वारा न की जाये ये, चुने हुए जन प्रतियों के संरक्षण में होने लगे तो वह जनतंत्र की कबूतर बाजी हो जाती है. इसे ही अंग्रेजी जुबान में " स्मागलिंग ऑफ़ डेमोक्रेसी " कहते हैँ.

लोकतंत्र के सबसे मज़बूत स्तम्भ विधायिका में कबूतरबाजी चिंता का विषय है भी और नहीँ भी. "जन "की चिंता का विषय है भी नहीँ क्योंकि उसके हाथ में कुछ है ही नहीँ. चिंता का विषय उन लोकतंत्र के उन सिपाहसलारों के लिए हैं जो कबूतर पर सवारी कर रहे हैँ. कबूतर पर बैठकर इतनी ऊँची उड़ान से डायरेक्ट जमीन पर जा गिरने की चिंता और गिर गये तो चोट लगने पर इलाज की चिंता.

मंगरू की चिंता इस बात को लेकर है कबूतरबाज पकड़ में आये तो कैसे?

शायद पकड़ में आते भी नहीँ अगर 'कबूतरी दो नंबर 'की जुबान भूल न जाते. एक शब्द सही निकला नहीँ कि

जाल में जा फंसे. चिडिमार बिचारे शराफ़त में मारे गये. भूल गये कि हर धंधे के कुछ उसूल होते हैं. सांप सांप को नहीँ खाता. सपेरा भी सांप गुजर जाने के बाद ही डंडा पीटता है. वे भी लकीर पीट रहे हैँ.

अरे! जो जनता को भला फुसलाकर अगले पांच साल का लाइसेंस फिर हासिल कर सकता हो वही असली जनप्रतिनिधि कहलाने की कूबत रखता है. दबी जुबान में बहेलिए का दूसरा नाम ही चिड़ीमार है. तभी तो उसने आपने धंधे को दूसरा आयाम दिया. जो कभी लखनऊ और उसके आस पास पाया जाता था वही कबूतर बाजी अंतर्राष्ट्रीय मुकाम पर पहुंच गयी है. चिड़िमारों की कम मजबूत बिरादरी नहीं है. सबसे बड़ी बात चिड़ी मारों का निशाना कभी नहीँ चूकता. लासा लगाने में पूरे माहिर. कबूतर बाज आपने फन में पूरा माहिर होता है. उसके विविध रूप हैँ. चा सभी जगह उनकी सशक्त घुसपैठ है. राजनीति हो या समाजिक क्षेत्र, धार्मिक हो अथवा साहित्य. चिड़ीमारों की कहीं कमी नहीँ.

जुम्मन भाई के आपने तर्क हैँ, मंगरू भाई के आपने तर्क हैँ. वैसे चिड़ीमारों की भी अपनी बिरादरी है. जबसे उनपर चिड़ीमारी का दाग लगा है वे खुद को दबे, कुचले पददलित समझने लगे हैँ. लोकतंत्र का यह भी एक चेहरा है-बदसूरत, बदनुमा बढ़ दाग सही. जो समझते हैं, समझते रहें.

वैसे जुम्मन भाई और मंगरू कि बातों को अगर दरकिनार कर दिया जाये तो अज्ञेय कि पंक्तियाँ सब पर भारी पड़ती हैँ जब वे कहते हैं - मूर्ति का निर्माण हो सकता है पर मृतिका का नहीँ. उसी मिट्टी से अच्छी प्रतिमा भी स्थापित हो सकती है और बुरी भी. मिट्टी में ही अगर दोष हो तो उसे बिना सुधारे बिना, वहाँ कितने ही प्रचार से, कितनी भी शिक्षा से कितने भी ज्वाजल्यमान बलिदान से अच्छी मूर्ति को तराशने, बनाने की बात सोंची भी नहीं जा सकती.

■■■

हमारी विरासत

मुस्लिम व्यापारियों ने बचाई थी गुरु गोबिंद सिंह की जान

*सिख इतिहास में **1705** का वर्ष केवल संघर्ष और बलिदान के लिए ही नहीं, बल्कि मानवता, साहस और धार्मिक एकता की एक अनूठी मिसाल के लिए भी स्मरणीय है।*

चमकौर के युद्ध के बाद गुरु गोबिंद सिंह जी अत्यंत कठिन परिस्थिति में थे। वे आध्यात्मिक रूप से अडिग थे, किंतु शारीरिक रूप से थके हुए, उनके साथ कोई सैनिक नहीं था और मुग़ल शासक की खोजी टोलियाँ चारों ओर उन्हें ढूँढ़ रही थीं।

इसी घोर संकट के क्षण में नबी ख़ान और ग़नी ख़ान सामने आए। दोनों साधारण मुसलमान व्यापारी थे, लेकिन उनके भीतर असाधारण साहस और मानवता का भाव था। उन्होंने गुरु गोबिंद सिंह जी को एक मुसलमान फ़कीर "उच दा पीर" का रूप देकर भेष बदल दिया और उन्हें मुस्लिम संत के वस्त्र पहनाए। इसके बाद वे गुरु जी को शासक की चौकियों और पहरेदारों के बीच से सुरक्षित निकाल ले गए।

गुरु गोबिंद सिंह जी उनके इस अद्वितीय साहस और सेवा से गहरे प्रभावित हुए। उन्होंने उन्हें सदा के लिए सम्मानित करते हुए कहा, "तुम मेरे भाई हो। जब तक पंथ जीवित रहेगा, तुम्हारी सेवा याद रखी जाएगी।" यह कथन केवल कृतज्ञता नहीं, बल्कि मानवता और भाईचारे की अमिट मुहर था।

आज पंजाब के माछीवाड़ा में स्थित गुरुद्वारा ग़नी ख़ान नबी ख़ान (रौज़ा शरीफ़) इस ऐतिहासिक घटना की जीवंत स्मृति के रूप में खड़ा है।

आज जब समाज विभाजन और अविश्वास के दौर से गुजर रहा है, तब नबी ख़ान और ग़नी ख़ान का यह साहसिक कार्य हमें याद दिलाता है कि मानवता ही सबसे बड़ा धर्म है। यह घटना न केवल सिख इतिहास की, बल्कि भारतीय साझी विरासत की एक अमूल्य धरोहर है, जो हमें आपसी भाईचारे और एकता का मार्ग दिखाती है।

■■■

RNI NO. : UPHIN/2016/68336

See Media Map Website

Website link: www.mediamap.co.in

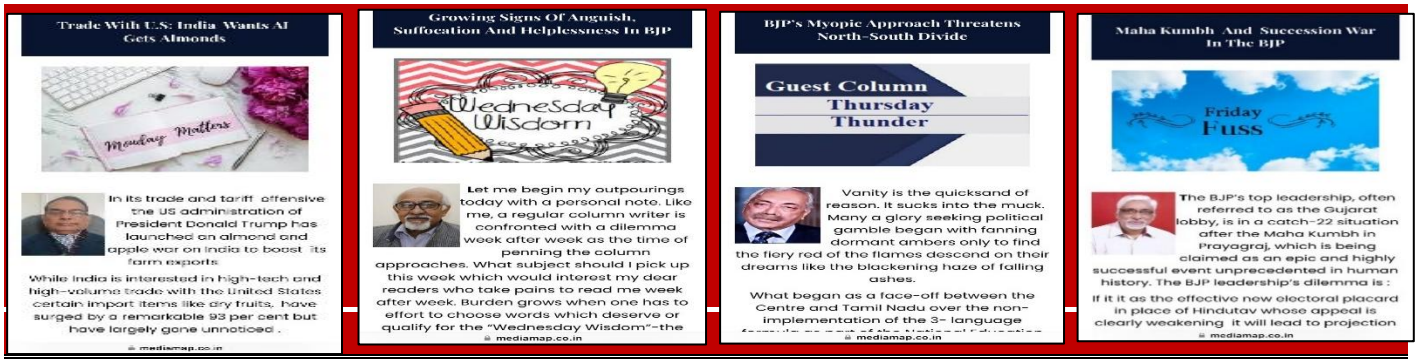

View Media Map YouTube

Media Map News

जनसंवाद 7 : खानपान पर रोक क्यों? Ep- 124

3 views • 4 hours ago

जन संवाद 6 : नेहा हो या कुणाल, व्यंग्य से क्यों डरना? Ep- 123

4 views • 4 hours ago

विविधा 15 : जज को भी छह महीनों की सजा : Ep- 122

27 views • 21 hours ago

विविधा- 14 : कंपनी की तानाशाही - आपके प्रोडक्ट को ख़राब कर रहें हैं। Ep- 121

6 views • 23 hours ago

आर्थिक सहयोग की अपील

उदार लोकतंत्र और गैर-सांप्रदायिक विश्वास के दर्शन से जुड़ा, मीडियामैप समाचार नेटवर्क एक गैर-व्यावसायिक संगठन है। हम आप जैसे गंभीर और समझदार पाठकों को संबोधित करना चाहते हैं। वरिष्ठ मीडियाकर्मियों के समूह द्वारा किया गया यह एक स्वैच्छिक प्रयास है, जिसका किसी राजनीतिक, सामाजिक या व्यावसायिक समूह से कोई संबंध नहीं है। मीडिया मैप के प्रकाशन को निरंतर व सुचारु रूप से जारी रखने हेतु आपका सहयोग आवश्यक है।

- **State Bank of India**
- **Account No. 43812481024**
- **IFSC # SBIN0005226**
- **प्रस्तुत QR कोड को स्कैन करें।**

SBI

MEDIA MAP

SCAN & PAY

UPI ID: 9810385757@sbi

Advt.

Scholars Destination

PLEASE CONTACT

9045005700 | 9910322682 | www.sdmotel.com | info@sdmotel.com

BHALUGAAD WATERFALL

KAINCHI DHAM

MUKTESHWAR DHAM

CHAULI KI JALI